ॐ
चिदाकाश की चिन्मयी लीला
स्वामी श्रीमद् रामहर्षणदास जी महाराज

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

॥ श्री सिद्धि लक्ष्मीनिधिभ्यां नमः ॥

चिदाकाश-की-चिन्मयी-लीला

श्रीमद् रामहर्षण दास
स्वामिनाप्रणीतं

लेखक :

श्रीमद् रामहर्षण दास जी

प्रकाशक :

श्रीमती गीता सिंह
पत्नी इं० कृष्ण कुमार सिंह
उपपरियोजना प्रबन्धक
सेतु निर्माण इकाई, मऊ
मऊ (उ० प्र०)

श्रीमती गीता सिंह

प्रथमावृत्ति : १९९४

न्योछावर : ५० रु० मात्र

मुद्रक :

श्री वैष्णव प्रेस
दारागंज, इलाहाबाद
दूरभाष-६०७४६३

आभार :

(१) इं० डी० आर० विद्यार्थी
उपपरियोजना प्रबन्धक
सेतु निर्माण इकाई, रायबरेली ।

(२) इं० बी० डी० द्विवेदी
अवर अभियन्ता
सेतु निर्माण इकाई, रायबरेली ।

ग्रन्थकार

अनन्त श्री विभूषित, प्रेममूर्ति, पंचरसाचार्य

श्रीमद् स्वामी राम हर्षण दास जी महाराज

जाना सम्भव है जैसे सोने का सुख जागने पर ही अनुभूति का विषय बनता है।" (मिथिलेश किशोरी ने श्रीधर किशोरी को स्वयं अपने कर-कमलों से माल्य-गन्ध-पान आदि अर्पण कर भाभी का स्वागत किया। भाभी के अङ्क आसीन वैदेही की आरती उतार कर सखियों ने समवेत स्वर से मंगलानुशासन किया है।)

"अपनी भर्तृ-भगिनि के गृह पदार्पण करना भाभी जी का, अपनी ननँद के गौरव परिवर्धन के लिए है, भाभी का एकान्तिक स्नेह प्राप्त कर सचमुच वैदेही, वैदेही बन जाती है क्योंकि विशुद्ध प्रेम निर्मल, अमायिक और आत्मानुरूप होता है, अतएव प्रेमदेव के स्पर्श से प्रकृति-सम्बन्ध से विनिर्मुक्त हो जाना स्वाभाविक है। मधुर-मधुर वाणी में सिया जू ने कहा।)"

"किशोरी जू की भाभी आई हैं अपनी ननँद की चोटी करने के कैंकर्य-लाभ की कल्पना से। जिसे प्राप्त करने की इच्छा से अभिभूत सुर-ललनाओं का मन, अपने अर्थ को अप्राप्त अनुमान कर, अवसादित बना रहता है। मातृ-गृह में अपनी अम्बा के द्वारा चोटी करने की कला सिद्धा ने अपने आत्माधार की अनुजा के कैङ्कर्य में उपयोगी सिद्ध होगी, इसलिए सीखी थी। वैदेही की भाभी ने गत रात्रि की अन्तिम बेला में एक स्वप्न देखा, वह यह है, 'भाभी! देखिये भला! आपकी विद्यमानता होते हुए भी किशोरी की चोटी उसके मन की नहीं गुथी है, अतः आज श्रीधर कुमारी को जनक-दुलारी का केश प्रसाधन करना ही पड़ेगा, ननँद ने अपनी भाभी के हृदय से लिपट कर कहा।" स्वप्न ही में वैदेही की बन्धु-भार्या ने अपने को कृतार्थ समझकर कहा कि अवश्य! अवश्य! श्री किशोरी जी की सेवा करना ही उनकी सहज सेविका सिद्धा का स्वरूप है।"

"सीताग्रज की परम प्रसन्नता जो वैदेही के भाभी का चरम सुख है एवं अपना आत्म प्रसाद भी उनकी अनुजा अयोनिजा के कैङ्कर्य से ही सुलभ हो सकना सम्भव, है लाड़िली जू!"

"अभी-अभी अपनी भ्रातृ-बधू से की हुई केश-गुम्फन-क्रिया की अवलोकनि परिकर वृन्दों समेत आपके नलिन-नेत्रों को सुखावह सिद्ध होगी। अतएव आप इस आसन की सौभाग्य सीमा का परिवर्धन शीघ्र करें आसीन होकर और आपकी भाभी अपनी ननँद के आसन से कुछ ऊँचे इस आसन में बैठ जायेंगी।"

"हमारी भाभी अपनी ननँद से सब प्रकार से बड़ी हैं अतः उन्हें उच्चासन में बैठना ही शिष्टाचार के अनुकूल है।"

"यहाँ छोटी-बड़ी का प्रश्न नहीं है किशोरी जू! प्रयोजन चन्दन-चर्चिताङ्गि चारुस्मिता चन्द्रवदना की चारुतया चोटी करने का है, यह सेवा कार्य, सेव्या को नीचे और सेविका को उच्चासन पर बैठाये बिना सिद्ध ही नहीं होता। अतएव कैङ्कर्य-कार्य-सिद्धि प्रक्रिया को अपनाना दोनों का धर्म है।"

लीजिये इस आसन में भाभी की ननँद बैठ गई, तो इस आसन में अवनिप कुमारी की अभिन्न-हृदया भाभी भी बैठ गई। उफ! आपके श्री मुख का दर्शन भी तो वैदेही को नहीं हो रहा है, हा कष्ट! बस एक भाभी के कर-कमल का स्पर्श ही सान्त्वना देकर शान्ति स्थापना का प्रयास कर रहा है।"

"यही दशा तो सिद्धा को भी वरण किये है कि जिससे उस चकोरी को सिय मुख के पूर्णचन्द्र का अदर्शन असह्य हो रहा है, हाँ यह बात अवश्य है कि किशोरी जू के कारे-कारे, कुञ्चित, कोमल-कोमल गभुआरे केशों का स्पर्श एवं उनकी सेवा का सौभाग्य सुलभ होने से सिद्धा का सुख संवर्धित हो रहा है।"

"चित्रे! किशोरी जू के केश-प्रसाधन की सभी नव्य-भव्य सामग्रियाँ केश-प्रसाधिका के समीप एक पीठ पर रख दो। ये सभी आवश्यक वस्तुएँ केश-कला-कुशलाजू के सन्निकट रखी हैं, सहचरी स्वयं सामयिक साधन सामग्रियों को समय-समय पर उठा कर देती रहेगी। अच्छा! तो वैदेही जू की भाभी ने अपनी प्राण प्रियतरा ननँद की चोटी करने का श्री गणेश भी कर दिया है।"

"अहो! आश्चर्य! किशोरी जू के कमनीय कच कितने चिक्कन और और चमकीले हैं, फुलेल लगाने से तो और अनियारे हो गये हैं, अहह! शिशु-केशों के समान गभुआरे हैं ये, इनका स्पर्श कितना मधुर, मृदुल एवं सुखावह है, कारी-कारी, किशोरी जू की केशावलि अलि-अवली और अहि-आत्मजाओं की शोभा को तिरस्कृत करने में स्वल्प-संकोच करना भी नहीं जानतीं।"

"चित्रे! केश बन्धन, शीशफूल आदि शिरोभूषण एवं सुरभित सुमन सिद्धा के हाथ में देती जाओ क्रमशः।"

"हाँ, हाँ, ये लीजिये ! सभी आवश्यकीय वस्तुएँ दे रही है यह चित्रा ।"

"अब श्री किशोरी जू के सम्मुख दर्पण उपस्थित करो तुम ! अपनी भाभी का किया हुआ कैङ्कर्य उनके मुखाम्भोज को विकसित बनाने वाला है या नहीं ? सेवा की सफलता सेव्य के मुख में प्रसन्नता की रेखाओं के दर्शन से ही होती है ।"

"निमि कुँवर-कान्ता की केश-प्रसाधन कला कितनी कमनीय एवं कौशल्यपूर्ण है जिसके दर्शन करने से आँखें अघाती नहीं, किं पुनः श्री सौंदर्य सार विग्रहा किशोरी जी के कारे-कारे कुञ्चित कचों की चोटी की कथा ! सब सखियों ने समवेत स्वर में कहा"—

"अहो ! भाभी के कर-कमलों से गूँथी वेनी कितनी कला के कोष को अपने में धारण किये हुए सीता की सुख-सम्वर्धिनी सिद्ध हो रही है, मणि, माणिकों एवं पुष्पों का गुम्फन कैसी असाधारण कला से किया गया है, सम्भव है सरस्वती जी भी इसे अनुपमेय कहकर ही सिद्धि-कला का किंचित वर्णन कर वाणी को विराम देने में बाध्य हो जायेंगी । क्यों चन्द्रकला जी ! बात सही है न ?" "सर्वथा सत्य है, देव-वधुएँ निमिकुल कुमारी के चोटी का दर्शन करके, साधारण समझती होंगी स्वयं की केश-कला को साथ ही स्पर्धा का बीज उनके उर को उर्वी में बिना जमें न रहा होगा । यह सब भ्रातृ-वधू के कला-वैभव का चमत्कार है, चन्द्रकला जी ने कहा ।"

"प्रशंसा के बीज से अपने भाभी के अन्तःकरण में अहं का पौधा उत्पन्न न करें, जो सिद्धि है व उसमें जो कुछ भी है, वह सब उसकी प्राण प्रियतरा ननँद का है, अतः न वह है न उसका, जो है श्रीकिशोरी जू हैं और उनका । श्री लाड़िली जू का मंगल हो, मंगल हो ! मंगल हो ! सदा मंगल हो !"

गृह-वाटिका-विहार करने की भावना अपनी भ्रातृ-भार्या के साथ, भूमिजा के अन्तःकरण में उत्पन्न हो रही है, क्या कामना की बेलि को पुष्पित कर सकेंगी भाभी जी ?"

"अभी-अभी भूमिजा-भवन के भव्य उद्यान में भाँति-भाँति के सुरभित सुमनों के बाहुल्य सुगन्ध-सरोवर सर्वतः वैदेही की बन्धु-वधू को न छोड़ेगा अपने में आतमसात किये बिना, क्योंकि किसी प्रकृति-प्रभूत शक्ति में यह सामर्थ्य असम्भव है कि वह उलट फेर कर दे विदेह वंश वैजयन्ती की इच्छा सिद्धि में ।"

'तो अभी प्रस्थान करें, कहती हुई भाभी की करांगुलि पकड़कर चल पड़ी मिथिलेश कुँवारी।'

"अहो ! गृह उद्यान के आकाश में विविध भाँति के विकसित पुष्पों की नक्षत्र पंक्तियाँ अपनी सहज शोभा से अपने आश्रय प्रदाता की महिमा को समुन्नतशील बना रही हैं, सुखद शीतल मन्द वायु सुगन्ध से संयुक्त होकर वाटिका के बाह्य प्रान्त को भी सौरभ प्रदान कर अपनी उदारता का परिचय दे रहा है। भ्रमरों का गुञ्जार एवं पुष्पों पर उनका मड़राना मधुलोभी अन्य मधुपों का आह्वान-सा करता हुआ बगीचे के मधु कोष की अक्षयता की सूचना दे रहा है। कलरव करते हुए बहुजातीय पक्षियों का बाहुल्य, सोमरस पान करने के लिए आये हुए आमन्त्रित ब्राह्मणों की परस्पर शास्त्र चर्चा जैसी उपमा की उत्पत्ति हो रही है, थालों में जल देने वाली सेविकाएँ ऐसी लग रही हैं, जैसे कीचड़ लगे बच्चों के पादों को माताएँ ऊपर से पानी डालकर प्रक्षालित करती हैं। यह श्री जी की बगीची, उमा, रमा, ब्रह्माणी की विहार स्थली को बाध्य कर देती है अपने पाद-पद्मों में सिर झुकाने के लिए। आनन्द ! आनन्द !!"

"श्रीधर कुमारी श्री सिद्धि जी उक्त वार्ता करती हुई अपनी ननँद के साथ वाटिका-विहरणशीला प्रतीत होने लगीं।"

"यह वाटिका तो अपने भ्रातृ-वधू की है, आज इसकी उपयोगिता सर्वभावेन सिद्ध हो गई उनके आगमन से, तभी तो बहुत दिनों में परदेश से आये हुए पतिदर्शन से प्रोषिता पत्नी की भाँति परम प्रसन्नता की अनुभूति कर रही है, यह वाटिका !"

यह पुष्प उद्यान विकसित वदन बन कर नेत्रों का विषय इसलिए हो रहा है कि बुद्धि-वैशद्य के कारण इसने अपने को श्री विदेहराज तनया जू के लिए, उन्हीं का और उन्हीं के कृपा से पलापोषा सर्वभावेन समझकर तत्सुख सुखित्वम् की भावना से भावित हो गया है। अहो ! यह उद्यान तो सर्वथा शिक्षक है सिद्धा का। अपनी प्राण-प्रियतरा ननँद की अनुकम्पा ने यहाँ लाकर, संयोग उपस्थित कर दिया है सिद्धि के स्वरूप सिद्धि के लिये।

"जैसे निमि-कुल कुमारी, निमिकुल-वधू की हैं, तदनुसार यह बगीची भी है अपने भाभी की।"

"अवश्य ! अवश्य ! प्रेमास्पद में प्रेम की पर्यवसिति होती है तदीयत्वानुराग से, अतएव सिद्धि की दृष्टि एक होनी चाहिए आप और आपकी बगीची में। अपनी प्राणाधिका वैदेही की सुख-संविधायिका वस्तु के साथ कम न होना चाहिए उनकी भाभी का प्रेम ! अतः ननँद और तत्सुख-

संविधायिनी तदीय वस्तुएँ (प्राणी-पदार्थ और परिस्थितियाँ) अति उपयोगी हैं सिद्धा की आत्म यात्रा के लिए।"

"हम अपनी भ्रातृ-वधू की हैं और बन्धु-वधू, वैदेही की इतने से अतिरिक्त ज्ञान की अनुपलब्धि विदेहकुमारी और श्रीधर कुमारी को परस्पर दो के एक बने रहने के लिए पर्याप्त है, श्रीकिशोरी जी ने कहा। (तत्पश्चात् भाभी के हृदय लगकर)……कुछ काल हम दोनों उद्यानस्थ इस सिंहासन में बैठकर अवलोकन करें, बगीची की श्री शोभा का। (दोनों एक दूसरे के हृदयाबद्ध होकर बैठ गईं।) चन्द्रकले! एक सुन्दर सलोना सुखप्रद संगीत सुनाएँ भाभी जी को, ऐसी इच्छा उत्पन्न हो गई है आपकी वैदेही के मन में।"

"आप श्री की इच्छा की अवहेलना करने की शक्ति किसी में नहीं है त्रिभुवन में, सर्वेश्वरी जू! अच्छा श्रवण करें!"

विविध वाद्यों के साथ—

निरखु अली दोउ चन्द्र के चन्दा
उपवन-गगन उये परिपूरण, बिखर प्रकाश गयो तम मन्दा
बिनु शश चिह्न सुधाकर सजनी, वर्षि रहे अमृत सुख कन्दा
सबहि सुखद सद्गुण के आकर, सुमिरत जाहि मिटै भव फन्दा
परम पुनीत परस्पर प्रीती, वरणि सके नहि वाणि स्वच्छन्दा
रसमय दोऊ रसहि में रासे, धन्य-धन्य दूनहु जग वन्दा
परिकर वृन्द करें नित दर्शन, तेहिं ते अहनिशि रहैं अनन्दा
हर्षण हर्षि हृदय में ध्यावत, भागि गये सिगरे दुख द्वन्द्वा

"चन्द्र की किरणें जैसी सुधा शीतल विशुद्ध वाणी में सर्वाङ्गीण सुष्टु एवं समीचीन संगीत शास्त्र रीत्या श्रवण कराया है चन्द्रकला जी ने किन्तु अमल चन्द्र के साथ जिस एक और चन्द्र को आसन में बैठाया गया है, वह उस विश्ववन्दित विमल-विख्यात चन्द्र के सादृश्य का स्वप्न भी नहीं देखता, प्राकृत-अप्राकृत, अन्धकार-प्रकाश और अज्ञान-ज्ञान में जो अन्तर है वही अन्तर चन्द्रकला जी के युगल चन्द्रों में परस्पर है, परन्तु पद की सर्वाङ्ग सुलभता सुखावह है लाड़िली जू। आनन्द ने आकर आवृत कर लिया समाज को जय हो जनक नन्दिनी जू की जय हो सुनयनानन्द-वर्धिनी जू की, जय हो सिद्धि-सुख कन्दिनी जू की, जय हो भव-भय-भञ्जिनी जू की, जय हो जन मन रञ्जनी जू की, (जय हो जय हो की ध्वनि के साथ सुरभित सुमनों की वर्षा होने लगी आकाश से।)

"अहो ! आश्चर्य ! गगन से सुर-सुन्दरियों का समूह सा उतर रहा है, देखिये वह लाड़िली जू !"

"अवश्य ! अवश्य ! इनकी गति एवं काय-वैभव बता रहा है कि ये आ रही हैं स्वर्गलोक से ।"

पुष्प वर्षा करती हुई खेचारियाँ बिना भूमि स्पर्श के अधर में स्थित हो गईं और लगी जय-जयकार करके किशोरी जू का दर्शन करने । भूमिजा जू की जय हो, उनकी भव्य भावपूर्णा भाभी जू की जय हो ।

"आप सबका स्वागत है, कृपा कर आप लोग इन आसनों में पधारें, अहो ! अयोनिजा की जय मनाकर मंगलानुशासन करने वाली देवियों की सदा जय हो, सिद्धि कुँवरि ने कहा ।"

"हम स्वस्वरूप में स्थित रहकर भूमि स्पर्श से वंचित रहती हैं क्योंकि हम सब सुर कन्यका हैं, कुँवर कान्ते !"

"अच्छा । (कुछ कामदार कोमल कालीन अधर में फेंककर) तो आप सब पूज्य देवियाँ इन आसनों में पधार जायें जिससे हम सब मनुज कन्याएँ भूमि से ही पाद-स्पर्श एवं आपके आतिथ्य क्रिया करने में सक्षम हो सकें, सिद्धि कुँवरि ने कहा ।"

"लीजिए आप से समर्पित आसन में बैठकर भाग्याधिका हो गईं हम सब, क्योंकि परम भागवता, भूमिजा की भाभी का अर्पित आतिथ्य हमारे गौरव को सुमेरु सदृश बनाने में सर्वथा समर्थ है ।"

"पुष्पाञ्जलि समर्पण के साथ हम सबका प्रणाम स्वीकार हो, देव कन्याओं को । अहैतुकी कृपा का प्रमाण आप अमानव देवियों का दर्शन दान देना है साधनहीन मानव कुमारियों को, अतः विदेह वंश प्रसूता हम सब कृतार्थ हो गईं । विशेष वार्ता कोई हो तो अनुशासन करें, किशोरी जू ने कहा ।"

"आप मानुषी नहीं अपितु मनुज-देव-दानव-किन्नर-गन्धर्व-नाग से आपूरित-त्रिभुवन की कर्त्री-भर्त्री और संहर्त्री हैं । उमा-रमा, ब्रह्माणि वन्दिता श्री की श्री को श्री बगीची में बैठे देखकर दर्शन की सुलभता का लोभ संवरण न करके हृदय की आतुरता ने यहाँ उतरने के लिए बाध्य कर दिया है । दर्शन प्राप्त कर सुफल मनोरथा हो गईं हम । जय हो जगत वन्द्या जानकी जू की ।"

"विशेष वार्ता यह है कि अयोनिजा की सेवा की अधिकारिणी बन जाएँ, ऐसी योग्यता प्रदान करें जिससे निज सेविका समाज में सम्मिलित

कर हम देव-कन्याओं को अपनी कहने के लिए बाध्य हो जाएँ विदेह वंश वैजयन्ती जू ! यही आशा और आकांक्षा लेकर आई हैं ये देवियाँ । जय हो कृपार्णवा कमल गन्धा किशोरी जू की ।''

''सुर कन्याएँ तो नर बालिकाओं की परम पूज्या हैं उन्हें सेविका के आसन में बिठाकर क्या सुख से कालक्षेप करना सम्भव हो सकता है किसी मानवी को ?''

''अस्तु, इन पुष्पहारों से आप देव कन्याओं का पूजन करती हैं हम, आपकी प्रसन्नता ही वरदान है, करबद्धाञ्जलि किशोरी ने कहा ।''

''हम लेने के लिये आई हैं देने के लिये नहीं । कृपण की मूर्ति बनकर करुणा की याचना करने मैथिली की शरण में आई हैं, पूज्या बनने नहीं आईं, अपितु पूजक बनकर पूजा करने की अभिलाषा लेकर आई हैं और देवकत्व का विसर्जन कर सेवकत्व सीखने आई हैं, देवकन्याओं की पद-प्रतिष्ठा को जनक किशोरी के पाद-पद्मों में समर्पित करने अमरपुर से आई हैं अस्तु उदार हृदया कृपा विग्रहा को अपने द्वार से विमुख करने का जब स्वप्न नहीं होता तो आज अपने को मानवी कहकर हम लोगों की वञ्चना करना क्या आपश्री के परिकरों को सह्य होगा ? यदि नहीं तो पेट खलाये इस द्वार में आकर पेट खलाये ही लौट जाना उचित न होने से उसकी पूर्ति करके ही देव कन्याओं को अब विदा देनी चाहिए भूमिजा को ।''

''आप सब स्वयं सिद्ध मनोरथा हैं, आपके मन की न हो, इसमें कोई विघ्नकरी शक्ति आड़े नहीं आ सकती । इस वैदेही का उपयोग आपकी इच्छानुसार हो जाए तो यह भी प्रकार भेद से सेवा ही है जनकजा की, सेवक की वही सेवा सार्थक है जो सर्वभावेन सुखावह हो सेव्य को क्यों ठीक है भाभी जी ?''

''आप यथार्थ कब नहीं कहती, किशोरी जू ! आपश्री का वाग-विसर्ग ही सत् के नाम से जाना जाता है आपके अतिरिक्त जो है वह असत् है । सुर-कन्याओं का आतिथ्य आपके द्वारा सर्वभावेन आपके अनुरूप हो गया, सिद्धि कुँवरि ने कहा ।''

अति अमला, वाक्य कुशला नवल-नागरी जू की वचन रचना के गर्भ में अन्तर्भुक अपनी कामना की पूर्ति का सांकेतिक प्रमाण प्राप्त कर (परोक्ष-प्रियो-देवता) अपनी बुद्धि का विषय बनाया । तत्पश्चात अधर स्थिता देव-कन्याओं ने पुष्प वृष्टि के साथ करसम्पुटाञ्जलि नतकन्धरा होकर जाने की विदा माँगी किशोरी जू से ।

प्रत्याभिवादन की मुद्रा में खड़े होकर देव-कन्याओं की रुचि का समर्थन किया मन्द मुसुकाते हुए किशोरी जू ने। देवियाँ आपकी अनुजा का मंगलानुशासन एवं जय-जयकार करके आकाश में उड़ती हुई-सी कुछ क्षण दृष्टि-पथ का विषय बनी पुनः अदृश्य के उदर में प्रविष्ट कर गईं। इस प्रकार श्रीलक्ष्मीनिधि जी अपनी अर्द्धाङ्गिनी से श्री सिया जू की अन्तर कथा श्रवण करके पुनः वे कथाहारी अन्य कथा श्रवण करने की मुद्रा में स्थित हो गये।

× × ×

४२

'अहो! कुँवर-कान्ता का यह कक्ष कितना कमनीय है, लगता है कलाधर की सम्पूर्ण कला का सार-संग्रह यहाँ शोभा सिन्धु की सारतमा शोभा के साथ पुञ्जीभूत होकर किसी के भी चित्त को अपहरण करने की क्रिया में बड़ा ही दक्ष है। रीझा हुआ, सबको रिझाने वाला राम समर्थ नहीं हो रहा है स्वयं के चित्त को अन्यत्र ले जाने में, चित्त निरोधात्मक शक्तियाँ स्वयं पंगु होकर चित्त के सहारे सिद्धि-सदन के दर्शन लाभ से वञ्चित नहीं रखना चाहती हैं अपने आपको, यह भवन है कि किसी के भाभी की भास्वर अभौतिक चारु-चुम्बकीय-शाला है जहाँ जगन्मोहन का चित्त-लौह स्वयं आर्कषित होकर संलग्न हो रहा है प्रति सम्बन्धी से, अपनी श्याल-वधू का आगन्तुक आत्म-अतिथ, सदन का दर्शन करे या सदन के स्वामिनी का, आँखों का व्यायाम आज स्वयं को पीड़ा पहुँचाने में प्रवृत हो रहा है क्या? साथ ही उक्त दो में से किसी भी एक में रुकने से मन मृत-प्राय प्रतीत होने लगता है, परमार्थ तत्व के अतिरिक्त ज्ञानेन्द्रियों को कोई विषय नहीं रहता अपना।'' परिकर वृन्दों से सादर सेवित स्वर्ण सिंहासनासीन रघुनन्दन राम ने समीपस्थ सिद्धि कुँवरी से कहा।''

''सिद्धि-सदन का सारा दृश्य ही क्या? सारे संसार का दृश्य, दृश्य-कर्ता को इसलिए अच्छा लगता है कि वह स्वयं दर्श में स्थित प्रतिबिम्ब के समान, जड़-चेतनात्मक सारी सृष्टि में देखता है अपने को, अतएव दृष्ट चित्तापहारी सौन्दर्य सारतम सिन्धु को सारा दृश्य-प्रदर्शन दृष्टाकर्षक प्रतीत हो तो आश्चर्य क्या? राम के श्याम-वधू का ही मात्र मत हो ऐसा, सो नहीं अपितु सृष्टि कार्योपरान्त सृष्टि की ओर दृष्टि डाली सृजन कार्यकर्ता ने, तो उसके बाहर भीतर अपने से अतिरिक्त अणु मात्र कुछ न पाया, यह स्पष्ट

वर्णन किया गया है वेदों में। स्वकृत को स्वकीय मायाधीन बेचारे अल्पज्ञ जीवों के माथे मढ़ना मायापति का माया का खोल पहनाना नहीं है क्या? उसकी वंचना करने से उसे कहीं ठौर है क्या जहाँ न ठगा जाय? अहं के बोझ से दबे हुए के शिर के ऊपर असाध्य अहंकार का बोझ लादकर उसे रसातल पहुँचाना नहीं है क्या? घाव से प्रपीड़ित पुरुष के घाव में नमक धुरकर उसे नरक यातना से कम दुःख पहुँचाना है क्या? अहो! सिद्धि नामक बेलि अपने आश्रयी विशाल वृक्ष के आश्रय को न पाकर कैसे कर सकती है स्वरक्षा का स्वतन्त्र साधन, रक्षा तो दूर रही उसके अस्तित्व का नास्तित्व के रूप में परिवर्तित हो जाना असम्भव नहीं है, श्री सिद्धि कुँवरी ने कहा।''

''स्वाङ्गों को हृष्ट-पुष्टपूर्वक आलस्य-विहीन शान्त दान्त चित्त से लौकिक-वैदिक कार्यों का अनुष्ठान भगवदर्पित करने से सहज ही आत्मा परम प्रसन्नता के सिंहासन में स्थित होकर बधाई देने लगता है अपने ही अन्तःकरण को। अहो! अपने कहाने वाले मन, चित, बुद्धि और अहं ने परमार्थ स्वरूप में अपने को लगाकर, अवसादित होने से बचा लिया अपने अङ्गी आत्मा को, अब अध्यात्म समेत आनन्द की अनुभूति करो, तुम्हें बधाई है, बधाई है बोल उठता है अङ्गी। तदनुसार अपनी अंग भूता श्रीधर कुमारी की सर्व चेष्टाएँ उसके अंगी राम को सर्वभावेन सुख संविधायिनी हों और वह बोल उठे कि वाह! अपने अंग कितने अच्छे हैं! मेरे आनन्द का संप्रवर्धन करते रहते हैं अस्तु, इनमें मेरा आकर्षण है तो यह वार्ता क्या अंगों को अभिमान के गर्त में गिराने के लिए है? अरे! निरभिमानी के अङ्ग कैसे गिरेंगे अभिमान की खाई में? अतः उक्त प्रकार के विपरीत ज्ञान से मस्तिष्क को बोझिल नहीं बनाना चाहिये सिद्धि कुँवरी जी को।''

''अङ्ग नियत वस्तु है स्वयं अङ्गी का अतएव वह उसके उपयोग के लिए सहज सिद्ध है, जब उसकी सेवा भी उसी की शक्ति और प्रेरणा से ही होना संभव है तब जड़ स्वरूप अङ्ग की महिमा का व्यर्थ ज्ञान संकोचप्रद ही सिद्ध होगा उसको कि नहीं?''

''भेद दृष्टि से ठीक कहना है आपका, किन्तु जब अङ्गी-अङ्ग में अभेद है तब अपने आनन्द विवर्धन के लिये उचित ही है राम का कथन उपर्युक्त प्रकार से।''

''वैदेही वल्लभ की वार्ता सर्वथा सत्यसार एवं समीचीन होती है जिसमें असत्यता अप्रियता आदि वाक्य दोषों का दर्शन दोष-दर्शी एवं अन्तर

प्रेक्षी आलोचक को भी दुर्लभ रहेगा। छिद्रान्वेषण करते-करते कल्पान्त बीत जाने पर भी। वैदेही की भाभी ने तो मात्र अहं के पिशाच के भय से आपन्न होकर उक्त वार्ता अपनी ननदोई से कही है क्योंकि उसके आश्रय और अभय प्रदाता एक वही हैं, उन सर्व लोक-शारण्य की आश्रिता को अहं की विभीषिका का वीभत्स भयानक काला मुख देखना पड़े तो उनके विरद के अनुकूल न होगा। अच्छा इस अन्तर प्रसंग को यहीं विराम करने दें। अब आपश्री श्रवण करें! राम को अपनी श्याल वधू का सदन क्यों आकर्षक सिद्ध हो रहा है? उन महोदय श्री को जानकारी न होगी कि इस भवन के अधिष्ठातृ अभिमानी देवता वे हैं जो संसार को ही नहीं अपितु सबको रमाने वाले राम को भी अपने अप्रतिम रूप-गुण-शील स्वभाव से अपनी ओर आर्कषित करने में सर्वभावेन समर्थ हैं, वे सदा यहीं निवास करते हैं, इस-लिए उनकी सकाशता एवं अपरिमेय अनुकम्पा से यह सिद्धि, सिद्धि का आचार और सिद्धि सदन, सीताकान्त को इस प्रकार सुख-सम्वर्धक सिद्ध हो रहा है जैसे सूर्य भगवान की सकाशता से जलाशय का सूर्याभास द्रष्टा को।"

"कहिये! यदि उन देव दर्शन की अप्राप्ति असह्य हो आपको, तो उनके माधुर्य-महोदधि का अविलम्ब दर्शन करा दूँ। दर्शनाभिलाषी आर्त अधिकारी को।"

"हाँ! हाँ! ऐसे महापुरुष के दर्शन की त्वरा ने आपके राम को वरण कर लिया है अतएव वह असहिष्णुता के आसन में बैठा हुआ अधीर होकर अपनी श्याल वधू का मुख ताक रहा है उसकी ज्ञान विषयक वार्ता सुनने के लिए।"

"अवश्यमेव अपने आराध्य की मुख मुद्रा के विकास हेतु सीताकान्त की सरहज अपने ननदोई को उक्त अनिर्वचनीय अगोचर महापुरुष के विषय में सुनाये क्या? दर्शनानन्दी को उनका दिव्य दर्शन कराकर दर्शक का कैंकर्य करेगी।"

"निमिकुल वधू को शीघ्रता करनी चाहिये अपनी वाक् पूर्ति के लिए, अन्यथा असत्य का स्पर्श हो जायेगा।"

"सत्यस्वरूप वैदेही वल्लभ के समक्ष असत्य अपना मुखड़ा दिखाने में असामर्थ्य का ही आलिङ्गन करेगा। (कक्ष की भीति से संलग्न रत्न जटित मन्दिराकार आलमारी का परदा पृथक कर) प्राणातिथि को ज्ञात हो जाना चाहिए कि वे महापुरुष यही हैं जिनकी सहज सत्ता से सिद्धि की सत्ता

संप्रतिष्ठित है। क्या कभी ये पुरुष नयनों का विषय बने हैं आपके ? यदि नहीं बने तो लोचन लाभ से वञ्चित न रहें सिद्धि के सर्वेश्वर।''

''अहो ! यह अप्रतिम एवं अनिर्वचनीय चित्र जिसका है वह अवश्य सौन्दर्य-सिन्धु से मन्थन क्रिया द्वारा निकले हुए सारतम सौन्दर्य के रत्न से विरचित विग्रहवान हैं, जिसमें माधुर्य और सौकुमार्य की दिव्य ज्योतियाँ अनवरत प्रवाहित होकर दृष्टि की विषय बनी रहती होंगी दर्शकों की। उस महापुरुष के पूर्ण गुण के गीत गाने में राम के श्याल वधू की वचनावली अपर्याप्त और पंगु प्रतीत होती है, अपने सम्बन्धी के मुख से अपने वाक्य वैभव का पराभव न सहकर कोषेंगी नहीं श्रीधर सुता ! क्योंकि वह उनका आत्मा नहीं है !''

'' नहीं, नहीं, स्वसुख के सुख एवं जीव के जीवन अपने आत्माधार को कोषना महापाप और अज्ञान को सादर आमन्त्रित करना है। अपने प्राणप्रिय अतिथि का कहना समस्त सन्त व शास्त्रानुमोदित है, उक्त महा-पुरुष की महिमा का वर्णन अनन्त श्रुति, शारदा, शेष, गणेश, महेश अनन्त काल तक अनवरत करते रहें तो भी अनन्त की महिमा अनन्त शेष रहेगी, यही कारण है कि वेद उसे अनिर्वचनीय कहकर मौन हो जाते हैं। यही कामना थी सिद्धा की कि चित्र के माध्यम से उसके ननदोई को यह ज्ञात हो जाय कि प्रतिबिम्ब का सजीव बिम्ब अर्थात् मूल आधार कितना महतो महीयान होगा, कि जिसकी महिमा का आंशिक स्मरण राम को आश्चर्य के वन में भटकने को बाध्य कर रहा है।''

' कोविदे ! ये महापुरुष आपके ज्ञान का विषय बनकर अपनी अर्चिका की अर्चना, अभ्यर्थना आदि ग्रहण कर आनन्द की अनुभूति करते होंगे कि नहीं ?''

प्रेम-पारखी प्रेमड़ हृदय होने कारण किसी भी प्रेमिका से प्रेमपूर्वक समर्पित पत्र, पुष्प, फल, जल आदि को ग्रहण करना इन महापुरुष का स्वभावगत धर्म है, तदनुसार कृपासिन्धु की, कृपापात्री बन जाती है इनकी यह सहज सेविका।''

''अहो ! तब तो राम की श्याल-वधू के हृदय-सिंहासन में संप्रतिष्ठित इस चित्र के लक्ष्यभूत महापुरुष हैं क्या कोई डिगा सकता है इस सत्य को ? कदापि नहीं, अतएव सिद्ध हुआ कि सिद्धि-सदन के भीतर प्रदेश में अपना आवास बनाये हुए अवश्य अन्य भावनास्पद भगवान् हैं और भवन के बाह्य प्रदेश में निवास करने वाला यह राम औपचारिक अतिथि है,

जिसका आतिथ्य भी औपचारिक है। जब राम को भी अपनी ओर आकर्षित करने वाले राम से सर्वभावेन श्रेष्ठतम पूजार्ह प्राणप्रिय अतिथि की प्राप्ति ने सहज ही सिद्धि कुँवरी को प्राप्ता के आसन में स्थित कर दिया है तब उस प्राप्ति से निकृष्ट अन्य प्राप्ति की ओर अनादर, अप्रियता, अवमानना और अरुचि की दृष्टि हो जाना स्वाभाविक है, श्याल वल्लभा की, अस्तु, सिद्धि-सदन से निष्कासित जीवन सिद्ध के सर्वस्व कहलाने वाले को असहिष्णुता की वेदी में बैठाकर विरह की वह्नि से सतत् संतप्त करता रहेगा। नीरज नेत्रों में नेह का नीर भरकर गद्‌गद् स्वर में सीता वल्लभ ने कहा।''

"अहो ! अन्तःकरण में क्या अन्तर्भुक कर लिया ? सिद्धि के सर्वेश्वर ने ! उर में उर्विजा-पति का मात्र एकाकी स्थान है, यह अनन्यता सीता की भाभी को सहज ही वरण किये है। हाँ यह बात अवश्य है कि जिस महापुरुष का ध्यान करके राम अपने को उससे अतिरिक्त नहीं पाते तथा रामभक्त भी जिसे राम ही कहते हैं, उस, चित्र के आधार मूलक सबके हृदय हरण पुरुष को अवश्य सिद्धि वैसा ही मानती है जैसे अपने ननदोई को। अतः राम को अपने रमाने वाले पर द्वेष दृष्टि नहीं करनी चाहिये पुरुषोत्तम !''

"कुँवर कान्ता की पहेली बुझाने सदृश वार्ता का विनियोग उसके ध्येय-ज्ञेय-सेव्य और श्रेय को समझ जाने में यथार्थ सहायक नहीं बन रहा है, बिन भटके को अपने वाक्‌वन में भटकाना निमिकुल नारी के अनुरूप न होगा। क्यों ? राम के उलझे मन को उसकी सरहज सुलझा नहीं सकती ?''

"क्यों ? लाल साहब ने स्वयं के माधुर्य महोदधि में स्वयं के सहित स्वयं के ऐश्वर्य को भी अस्त कर दिया है ? तभी तो चित्रा की स्वामिनी जू के हृदय देश में अपने से अतिरिक्त पुरुष की कल्पना करने लगे कौशल किशोर ! चित्रा जी ने कहा।''

"चित्रा जी से पूँछते हैं कि कौन-सी कल्पना की आपके राम ने ? उसने तो अपनी श्याल-वधू द्वारा दर्शन कराये गये उनके ध्येय, ज्ञेय, सेव्य और श्रेय का दिव्य दर्शन चारुतम चित्र में किया तथा उस, महापुरुष की महानता का परिचय सिद्धि-मुख से श्रवण कर पूर्णरूपेण प्राप्त कर लिया है, अतएव उपर्युक्त विषय राम की कल्पना का कैसे हो सकता है ?''

'बुद्धि-विशारद के बौद्धिक-ज्ञान का सूर्य वर्तमान समय में भ्रम के राहु से आच्छादित हो गया है इसलिए अपने से अतिरिक्त अन्य प्राणी

पदार्थों में उसके किरणों का प्रकाश नहीं पड़ता। सच पूँछे तो यह सब दोष श्याम के सौन्दर्य-सिन्धु, माधुर्य-महोदधि और सौकुमार्य सागर नामक त्रय संगियों का है जो उनके श्री अंगों से अभिन्न हैं, इन्हीं की काली करतूतों ने राम को अपने में अन्य की प्रतीति कराकर व्यामोह उत्पन्न कर दिया है, जिससे सर्व-समर्पिता सरहज सिद्धि को अनन्यता के आसन से गिर जाने की शंका का सिंह शंकालु हृदय को करोये जा रहा है, चित्रा ने कहा।'

'कूट गिरा जैसी बातें बुद्धि की विषय नहीं बन रहीं हैं, अपनी प्रति सम्बन्धिनी की। श्याल-वधू की वाणी स्पष्ट थी कि सिद्धि सदन में संप्रतिष्ठित एक महापुरुष का यह चित्र है, जिसे देखकर स्वयं राम ने उसकी काय सम्पत्ति पर मुग्ध होकर उसे अप्रतिम और अनाख्येय कहने में विलम्ब नहीं किया किन्तु राम की अनन्या का अन्यालम्बन, अशोभन और अनुचित अवश्य है, इसलिए उसके प्रति सम्बन्धी का हृदय स्वरूप स्थित नहीं रहा। विधिना का विधान अकाट्य समझकर सर्व समय सहिष्णु बने रहना विचारकों का विनिश्चय है, अस्तु जनक का जमाई भी ब्राह्मी स्थिति का अवलम्बन लेकर अशोक हो जायेगा। राम ने साश्रु कहा।''

'अच्छा! यह बतलाने की कृपा करें लालजी! कि इस चित्र में क्या वैलक्षण्य है जो सर्वथा वैदेही वल्लभ का स्पर्श न किया हो? चित्रा जी ने मन्द मुसुकान के साथ कहा।''

''जिस महापुरुष का यह चित्तापहारी चित्र है वह सर्वथा राम से विलक्षण काय वैभववान सिद्ध हो रहा है क्योंकि ''मोहितो यदृष्ट्वा रामो रमयतां वरः'' स्वयं की अनुभूति प्रत्यक्ष प्रमाण है चित्रा जी!''

''क्या मिथिला के मनमोहन अपना चित्र अपने हाथ से स्वयं उतार कर दर्शकों के दृष्टि का विषय बना सकते हैं? या स्वयं की शरीर सम्पत्ति का पूर्ण अनुभव करके सबको रमाने वाले राम उसमें रम सकते हैं? अथवा स्वयं वर्णन कर किसी के श्रवणों को समाविष्ट कर सकते हैं? सुख के सिन्धु में। मधुर-मधुर मुसुकराते हुए चित्रा ने कहा।''

''मैं ही क्या! कोई कलाकार सर्वाङ्गीण चित्रण कर सकता है अपने चित्र का, कदापि नहीं। स्वयं के काय वैभव को सर्वथा अनुभव का विषय बनाने में कोई नहीं समर्थ हो सकता, जैसे निज के रूप-सौरभ का ज्ञान कमल को अहर्निशि अविदित ही बना रहना स्वाभाविक है, अपने रूप का यथार्थ वर्णन करके किसी के श्रवणों को संतृप्त नहीं किया जा सकता, चित्रा जी! तो राम करे ही क्या?''

"ऐसी स्थिति में यह चित्र अन्य महापुरुष का है जानकी-जीवन के पास कोई प्रमाण है ? चित्रा ने कहा । प्रत्यक्ष में क्या प्रमाण चित्रा जी ! जगन्मोहन के मन को मोहित कर रहा है यह चित्र, इससे सिद्ध है कि राम के अदृष्ट और अश्रुत पुरुष का ही यह चित्र हैं चित्रा जी !"

"प्रार्थना है स्वामिनी जू से कि अपने अनुग्रह से इन प्राणप्रिय अतिथि को उस महापुरुष का साक्षात् दर्शन कराकर जीवन लाभ से वञ्चित न रखें. राम की श्याल-वधू का यह औदार्यपूर्ण व्यवहार वैदेही वल्लभ को अपने सरहज के समक्ष सदा कृतज्ञता प्रकट करते हुए आने को बाध्य करेगा. चित्रा ने कहा—"

"दर्श दिखाकर सिद्धि कुँवरि ने पूँछा, "क्यों सीताकान्त ! यह दर्श-संस्थित सर्वालंकारों से अलंकृत दृष्ट चित्तापहारी प्रतिबिम्ब कुछ विचार निमग्न हुआ-सा किसका हैं ? क्या उत्तर दे सकते हैं, सिद्धि के सर्वेश्वर !"

"अवश्य ! यह प्रतिबिम्ब सीताग्रज के सर्वस्व राम का है क्योंकि दर्श के सम्मुख मात्र वही स्थित है ।"

'इसमें किसी सन्देह का स्पर्श तो नहीं है ? प्राणधन को।"

'नहीं, नहीं, यह तो प्रत्यक्ष है जो सभी के दृष्टि पथ का पथिक है।"

"अब जनक के जमाई इस प्रतिबिम्ब के प्रत्येक अङ्गों का अवलोकन काय सम्पत्ति से संयुक्त करें, श्याम की सरहज ने कहा ।"

(क्रमशः देखते-देखते प्रतिबिम्ब के असमोर्ध्व सौन्दर्य पर मुग्ध होते समझ कर चित्रा जी ने शीशे को सीतावल्लभ के आँखों से ओझल कर दिया ।)

"क्यों रसिक राय रघुनन्दन अपने प्रतिबिम्ब पर इतना मुग्ध हो रहे हैं जैसे अपने से अन्य किसी सौन्दर्य सार विग्रह राजकुमार को देख रहे हों ?"

"क्या कहें चित्रा जी, प्रतिबिम्ब को नेत्र का विषय बनाकर भूल गया अपने को, लग रहा था कि यह प्रतिबिम्ब नहीं है कोई सुन्दर सलोना राजकुमार राम के चित्त को अपनी दृष्ट चित्तापहारी चितवनि से चुराने में स्वकीय चौर्य पटुता का परिचय दे रहा है कैसी यह मुग्धावस्था है जो अपने में अन्य का दर्शन कराने में सक्षम हो रही है।"

"यह सब श्याम सुन्दर के सौन्दर्य सार विग्रह का जादू है, जिसे देखकर वे स्वयं मुग्ध हो जाते हैं मुग्ध ही नहीं अपितु अन्य पुरुष समझकर अपने प्रतिबिम्ब का आलिङ्गनादि प्यार प्रक्रिया करने के लिए उनका मन

मचल उठता है. धैर्य विग्रह के धैर्य का बाँध टूट जाता है और अपनी भ्रमोत्पन्ना बुद्धि को सही समझकर अन्य के सही सूक्ष्म दर्शिनी विशुद्ध बुद्धि में वैपरीत्यानुसंधान करना पुरुष प्रवर के स्वभाव में आविर्भूत हो जाता है, सिद्धि के सर्वस्व ! अब अपने दर्श-संस्थित प्रतिबिम्ब और इस परम शोभनीय चित्र का अवलोकन करें तथा अन्तरप्रेक्षी छिद्रान्वेषी आलोचक आसन पर बैठकर यह निर्णय दें कि यह किसी चित्रकार द्वारा चित्रण किया हुआ चमत्कारी चारुतम चित्र और यह दर्श-संस्थित प्रतिबिम्ब एक ही पुरुष के दोनों हैं कि पृथक-पृथक दो पुरुषों के हैं ? सिद्धि कुँवरि ने कहा ।''

(बार-बार समाहित चित्त से दोनों ओर दृष्टिपात कर)

'सूक्ष्म दृष्ट्या दर्शक का ज्ञान यही कहता है कि प्रतिबिम्ब और चित्र दोनों, राम नामक एक ही उस पुरुष के हैं, जो सिद्धि-सदन का स्वामी किंबहुना सिद्धि का सर्वस्व है । अहो ! मात्र चित्र को देखकर यही लगा कि यह इतना मनमोहक चित्र किसी अन्य महापुरुष का है जो सबको रमाने वाले राम को स्वयं में रमाकर राम को स्मृति-शून्य करने में समर्थ हो रहा है, श्याल-वधू ने भी ''हमारे घर के अधिष्ठातृ देवता हैं ये, जिसे नेत्र का विषय बनाते ही राम अपने मन को समर्पण कर देते हैं उस पुरुष पर, वही सिद्धि का ध्येय, ज्ञेय है ।''

इत्यादि बातों की नमक मिर्चा मिलाकर जले में और जलन उत्पन्न कर दिया, अतः सिद्धि का सर्वस्व अपनी श्याल-वधू को क्या-क्या कह गया व्यामोह की अवस्था में, निज प्रतिबिम्ब जैसे चित्र के दर्शन ने ही स्वस्थ कर राम को आराम पहुँचाया है, उपकृत है उनका सम्बन्धी चित्रा जी से, दर्श-संस्थित प्रतिबिम्ब के माध्यम से भ्रम-तम को अविलम्ब प्रकाश के रूप में परिवर्तित कर देने की चित्रा जी के चतुराई पर बलिहारी है ! बलिहारी ! राम की दैन्य-दुर्दशा को देखकर चित्रा जी की स्वामिनी तो मजा लें रहीं थीं मजा !.....................किन्तु चित्रा जी ! मुसुकुराते हुए तिरछी चितवनि से वैदेही वल्लभ ने कहा ।''

''श्वसुर पुर में आये हुए लाल साहब को छकाने के लिए उनकी सारी सरहजों का काम स्वयं सिद्धि के ननदोई ने कर लिया तो हानि ही क्या हुई ? यहाँ अवकाश मिल गया उक्त लोगों को और राम को अपने शरीर से ममता-प्यार आदि क्रिया करने का अभ्यास हो गया, क्यों ठीक है न ?''

''वैदेही की भाभी के वचनों से उसके ननदोई को किसी प्रकार असत्यता के आंशिक प्रयोग का आभास ज्ञात।हुआ हो तो कृपा हो उसे सिद्धि के श्रवणों तक पहुँचाने की ।''

'मनमोहक राम को स्वयं में रमाने वाला महापुरुष ही सिद्धि-सदन का अधिष्ठातृ देवता एवं आराध्य है" इस वाक्य के आदि, मध्य और अन्त में अपने सर्वस्व सीताकान्त ही तो थे। जिसका दोष है व्यामोह उत्पन्न करने में, उसका नाम भी नहीं ले रहे हैं चतुर चूड़ामणि ! वह है रसिकाधिराज का काय वैभव, अर्थात् अनन्त सौन्दर्य, माधुर्य, सौकुमार्य आदि से संयुक्त सिद्धि के सर्वस्व का शरीर। अतएव उसे ध्यानपूर्वक देखा न करें विशेष कर स्वचित्र व स्वप्रतिबिम्ब को, अन्यथा परिछाहीं देखकर कूप में कूद पड़ने वाले सिंह जैसी गति का आलिङ्गन करना पड़े हमारे प्राण-प्रिय अतिथि को तो कोई आश्चर्य नहीं, मन्द मुसुकान के साथ सिद्धि ने निज ननदोई से कहा।"

"चलें आप श्री शृंगार कक्ष में, हमारे सर्वस्व के अस्त-व्यस्त हो गये हैं, शृंगार, करके कुछ अल्पाहार करा दें, हम लोग, जिससे लाल साहब स्वस्थ हो जायें।"

इस प्रकार सिद्धि मुख से अपने भाम राम की अन्तर कथा श्रवण कर लक्ष्मीनिधि जी सुख-सिन्धु में समावगाहन करने लगे, पुनः धैर्य धारण कर राम कथा श्रवण करने की आतुरता से युक्त होकर अपनी अर्द्धाङ्गिनी को प्रेरणा देने लगे, कथा कहने के लिए।

× × ×

४३

अपनी सारी-सरहजों से सेवित सीताकान्त सिद्धि सदन को निजानन्द के सिन्धु में अस्त कर स्वयं अस्त हो रहे थे, शान्त वातावरण में सुख के अतिरिक्त अन्य का न होना अस्वाभाविक नहीं है अपितु आत्मानुरूप है। वैदेही-बन्धु के भाम का भाव अपने श्याल के प्रति अप्रतिम और अवाङ्मनसा-गोचर है, वैदेही बन्धु का स्मरण मात्र उन्हें प्रेम के देश में स्थित कर विस्मृति की शय्या में सुलाने के लिए विलम्ब नहीं करता अतः स्मृति पटल में अङ्कित श्याल स्वरूप के स्मरण ने पिछले दिन अकस्मात् उस प्रशान्त महासागर से निष्कासित कर अपने में आत्मसात् कर लिया सीता वल्लभ को।

नेत्र में अश्रु वाणी में गद्‌गद्‌ता भर गई, प्रेम प्रकाश से विभूषित प्रफुल्ल मुखारविन्द निज दलों में जल बिन्दु की मोती से लिए प्रतीत हो रहा था, कारे-कारे कुञ्चित केशों की भ्रमरावलि परम पुनीत पराग पीने के लोभ को संवरण न करके उसे घेरे हुई थी। श्री मुखकमल की किशोर

केशर की कलिका ने समीपवर्ती प्रान्त को सुरभित बनाकर वहाँ के प्राणि समूहों की पिटारी में स्व सुगन्ध को पूर्णरूपेण भर दिया था।

अलि-अवली की पराग-प्रीति को देखकर उसे सम्मानित करने के लिए मधुप वत्सल महानुभाव के द्वारा रत्नजड़ित टोपी (सिरताज) पदक के रूप में दी गई थी। कुञ्चित कच के मधुपों के सिर पर जड़ाऊ सिरपेंच-दार टोपी स्व सूर्य संकास से बाह्याभ्यन्तर तम का विनाश करने में सक्षम ही नहीं अपितु नाम नहीं रहने दिया युगल तम का। उस मुखाम्भोज को अहर्निशि विकसित बने रहने के लिए युगल पार्श्व-संस्थित युगल कुण्डलों के युगल सूर्य अन्धकार के आने का अवसर ही नहीं देते थे अस्ताचल जाकर। चन्दन चर्चित केशरिया और (श्री मुख कमल दल की केशर) आसक्त बना रही थी गन्ध ग्राहियों की घ्राण को। नासिका-शुक मुख कमल को ईषत् श्याम लाल-लाल पक्व अनार जान कर उसमें बैठा हुआ अपनी चोंच में मुक्ता का एक अनार दाना लिये हुए बड़ी शोभा समुत्पन्न कर रहा था। मुख कमल की रक्षा के लिए श्याम परिधान धारण किए हुये सशस्त्र आँखों के दो अंगरक्षक थे। सुरभित मुख के अरुणिम अधर पल्लवों की मधुर मुसुकान, कमल की विकसित अरुण आभा थी, सुन्दर श्याम सुकण्ठ उक्त मुख कमल के नाल की मनोहरता का सादृश्य प्रकट करके श्याम जल से आपूरित शरीर-धड़ के सरोवर में कुछ उठा हुआ प्रतीत हो रहा था इस प्रकार श्याम सुन्दर की प्रेम-पूर्ण मुखमुद्रा का दर्शन करके उनके नेत्र बिन्दुओं को अपने अञ्चल के छोर से प्रोक्षण करने में विलम्ब नहीं किया उनकी श्याल वधू ने।

"सिद्धि के सर्वस्व को किसकी स्मृति ने नवल-नेह के हिंडोरे में झुला दिया है बिना बताये, हम लोग जान सकती हैं क्या?"

"रहस्यवार्ता भी कभी-कभी चित्त के संस्कारों से स्मृति पटल पर आते ही अविचारित और अकस्मात प्रभावित किये विना नहीं रहती शरीर-क्षेत्र को। सिद्धि कुमारी जी के कान्त की स्मृति ने चित्त में द्रवता उत्पन्न कर, देहपुरी के द्वारों को प्रेम घनता से प्रभावित कर दिया है, अन्यथा अन्य कारणों का सर्वथा अभाव था वर्तमान स्थिति में, इसलिए श्याल-वधू को अन्य शंका न वरण करे क्योंकि उनके राम की यही कामना है।"

"अब अपने श्याल के समुज्वल चरित्र-चन्द्रिका की सुधा से आप्लावित होना चाह रहा है उनके भाम का चित्त चकोर। क्या श्री लक्ष्मीनिधि-वल्लभा से सिद्ध मनोरथ हो जायेगा उनका अतिथि?"

"यह सामर्थ्य सिद्धि में नहीं कि वह अपने सर्वस्व सीतावल्लभ की इच्छा के प्रतिकूल आचरण कर सके, अतएव वह उनके आत्मसखा की कथा कहने की सेवा समातुर श्रोता के मुख विकास हेतु अवश्य करेगी, श्यामसुन्दर !"

"रात्रि का नीरव समय जहाँ उच्च रवकारी प्राणी ही नहीं एक भुनगा भी भुन-भुन की आवाज न आने के लिए मौन व्रत धारण कर पाठ पढ़ रहा था मौनी बाबा का, वहाँ वैदेही-बन्धु करुण क्रन्दन कर रहे थे; शयनासन पर। हा रघुनन्दन ! हा श्यामसुन्दर ! हा सखे ! हा प्राणेश्वर ! हा अपने श्याल के सर्वस्व ! कह कहकर सिसिकियाँ भरने का क्रम चल रहा था ! कर प्रहार का कठोर कष्ट कभी सिर कभी हृदय को विदीर्ण कर रहा था, हिचकियों का आना और वाणी की अवरूद्धता अवसादित कर रही थी सर्वाङ्ग को, निष्ठुर विरह की वह्नि धू-धू कर जला रही थी श्यामसुन्दर के सखा को। सभी श्रवणवन्तों की श्रवणेन्द्रियों का व्यापार बन्द था उस समय, अतएव सभी सुषुप्ति अवस्था के आलिङ्गन की सुखानुभूति कर रहे थे, कौन किसकी सुनता ऐसी दशा में। किन्तु आराध्य की अनुकम्पा ने बहे जाते को तिनके का सहारा दिया, सिद्धा ने वियोग की व्यथा से व्यथित हाय ! मेरे सर्वस्व ! आदि शब्दों को अपने कर्णों का विषय बनना जान लिया। अहो ! ये शब्द उसके प्राणवल्लभ सीताग्रज के कण्ठ के हैं। उठकर उसने उनके निकट प्रान्त में पहुँचकर देखा, उन्हें स्व-पर की स्मृति ने त्याग दिया है। वह करती ही क्या ? उस देश में वह न थी जहाँ उसके पति परमेश्वर अपने सखा की संस्मृति में संलीन थे। अतः पति प्राणा ने स्वपति को जलाती हुई वियोगाग्नि की आँच से अपने को उसी प्रकार बचाकर उसके शमन करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया जैसे किसी गृह में लगी अग्नि को बुझाने के लिए गृह के बाह्य देश में स्थित गृह-स्वामी। सीताकान्त के गुण-गणों का कीर्तन-जल तन्त्री के गागर के सहारे वाणी के कूप से निकाल-निकाल कर लगी छोड़ने उस प्रज्वलित विरह-वह्नि के देश में। कुछ समय के पश्चात वह अधीर अबला सफल हुई अपने उपायावलम्बन में। पुनः उस प्रेमातुरा ने साश्रु पादाभिवन्दन करके अपने अञ्चल से आर्यनन्दन के आँखों के अश्रु पोंछे और मुख-प्राक्षालन क्रिया के बाद किञ्चित पेय पिलाकर ताम्बूल पवाया. जिससे उनकी झुलसी हुई मुखमुद्रा हरी-भरी प्रतीत होने लगी। पूँछने पर वैदेही बन्धु ने अपनी प्राणप्रियतमा से बताया कि स्वप्न में सीताकान्त, सीताग्रज के साथ एक पलंग पर पड़े-पड़े परस्पर

प्रेम की बहुत सी बातें कर रहे थे, आनन्द के अम्भोधि में गोता लगाते-लगाते जग जाने के कारण उपर्युक्त परिस्थिति का आलिङ्गन अपने आप हो गया। अस्त्र-शस्त्र की चोट से बचा जा सकता है ओट लेने पर, किन्तु आनन्द सिंधु अयोनिजा नाथ से ओट आ जाने पर प्रेमी का जीवन खतरे से खाली नहीं रहता, रोज जीना रोज मरना उसकी चर्या बन जाती है अर्थात् विरह-व्यथा की तड़पन बिरही को ले जाती है मृत्यु की अन्तिम स्वांस तक और प्रेमास्पद से संयोग सम्प्राप्ति की आशा लौटाकर ले आती है अर्ध-चेतनावस्था तक, अस्तु वियोगी न जीता है न मरता है, घुट-घुट कर भी उसके प्राण पखेरू आशा से आबद्ध उड़ नहीं पाते, यदि प्रियतम के मिलन की आश, असम्भव की स्थिति में आ जाए तो प्राण पखेरू को देह के पींजड़े से निकलने में किञ्चित काल का विलम्ब असह्य हो जाता है। इस प्रकार की वार्ता के विनियोग से पुनः वैदेही-बन्धु के शरीर में सात्विक भावों के चिन्ह उदय होने की स्थिति जानकर वैदेही की बन्धु भार्या ने कोहवर कुञ्ज की कुछ लीलाओं को उनसे श्रवणों का विषय बनाया, सफलता ने भी वरण किया उसे।

"जानकी जीवन ने अपने आत्म-सखा की कहानी श्रवण करने की आतुरता से युक्त होकर अपनी श्याल वल्लभा को प्रेरित किया किन्तु कथा श्रवण करते-करते श्याल की दशा में ही भाम स्थित हो गये हैं, जानकर अब कथा की इति कर देनी पड़ी उसे। (आँखों के अश्रु पोंछकर ननदोई को प्रकृतिस्थ करने की चेष्टा से युक्त उनकी सरहज ने कहा।)"

"कुँवर कान्ता का राम उनके कान्त का दर्शन अविलम्ब चाहता है, वहाँ ले चलें उनके आत्म सखा को, जहाँ वे विरह वेदना से पीड़ित कराह रहे हैं, उनकी विरह ज्वाला उनके सुहृद के संयोग जल के छीटों से अवश्य बुझ जायेगी। अहो! उनकी चीत्कार एवं हाय सखे! सम्बोधन देकर आर्त पुकार नाम को श्याल के आसन में स्थित होने को बरबस बुला रही है, अरे! क्या हो रहा है कहाँ जा रहा हूँ? यह कौन बोल रहा है? दाशरथि राम कहाँ गया? क्या उसके स्थान पर कोई अन्य आ गया? क्या वह अपने श्याल के समीप पहुँच कर उनके हृदयालिङ्गन के आनन्द से अभिभूत होकर समाविष्ट हो गया है आनन्द सिन्धु में। किन्तु राम का वह सखा तो विरह के सागर में प्रथम अस्त हो गया था, अतएव वह उसे अपनी विरह-व्यथा की कथा भी न सुना सका होगा आलिङ्गन देने की चर्चा ही क्या? अरे! मुख से उन दोनों की परिस्थिति की वार्ता कैसे अप्रयास निकल रही है यदि

यह अन्य है तो ? क्या वे दोनों श्याल-भाम इस हृदय के घर में बैठकर स्व-स्व स्थिति का अनुभव कर रहे हैं, जिससे उन दोनों की कथा बिना निकाले निकल रही है मुख से ? हाय ! निमिकुल किशोर ! हा ! वैदेही-बन्धु ! हाय ! राम के हृदय धन ! अरे ! ये सम्बोधन शब्द इस तीसरे व्यक्ति के मुख से विरह वेदना के शब्द क्यों उच्चरित हो रहे हैं ? क्या मैं राम हूँ ? नहीं-नहीं उन श्याल-भाम दोनों की दुर्दशा का दर्शन करने वाला तीसरा व्यक्ति हूँ, वे दोनों इसके हृदय को रिक्त देखकर अपना आवास बना लिये हैं उसमें, इसी से उनके क्रिया-कलाप की प्रतिध्वनि प्रभावित कर रही है व्यक्ति विशेष को। क्या करूँ ? उर की उर्वरा उर्वी में बसकर उसका नामान्तरण स्वनाम से कराकर मुझे वहाँ का अनधिकारी सिद्ध कर दिये हैं तभी तो इसे अपने नाम ग्राम के स्मरण से हीन होना पड़ रहा है। आप लोग कौन हैं ? क्या काम है यहाँ आप सबके स्थिति का ?"

"हम आप श्री की श्याल-वधू है, अपने ननदोई के कैङ्कर्य करने का ही मात्र प्रयोजन है।"

"हम कौन हैं ? और हमारे श्याल एवं श्याल-वधू कौन हैं ?"

"आपश्री दाशरथि राम हैं तथा सुनयनानन्द-वर्धन आर्य मिथिलेश कुमार आपके प्राणाधिक प्रिय श्याल हैं और यह बिडावल नरेश श्री श्रीधर की पुत्री सिद्धि कुँवरि सरहज हैं आपकी।"

"अच्छा मैं ही राम हूँ,"

"हाँ, हाँ आप ही श्री सीतावल्लभ हमारे ननदोई राम हैं।"

"आश्चर्य ! हम सबके अंग शिथिल और प्रेमालाप से विवर्ण क्यों हैं ?"

"अपने श्याल की वियोगावस्था की दुर्दान्त दुर्दशा को श्रवण करके उनके भाम की यह दशा हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। हाय ! कितना श्रम, कितना कष्ट, राम तो स्वयं को खोकर अपने आत्म सखा को भी खो दिया था, किन्तु श्याल-वधू के सौजन्य और सौहार्द से श्याल-भाम दोनों अपने हाथ लग गये। साश्रु अवध किशोर ने कहा।" (पुनः प्रेम चिह्नों से चिह्नित होकर)

"कुँवर वल्लभे ! अब मुझे शीघ्र वहाँ ले चलो, जहाँ राम का रंजन करने वाले उसके आत्म सखा हैं। हाय वे अपने के बिना व्यथित चित्त, क्षण को कल्प समझ रहे हैं, किन्तु उनका राम उनकी दशा से अवगत भी न हुआ अब तक।"

(अधीरता के आवेश में आकर वैदेही-वल्लभ को उठते देखकर कुँवर वल्लभा पुनः आसन में आसीन होने का प्रयत्न करती हैं ।)

"श्याल-सुख-कन्दन रघुनन्दन ने अपने श्याल की व्यतीत विरह व्यथा को वर्तमान की स्थिति में स्थित का ज्ञान अपनी बुद्धि में आरोपित कर लिया है. वैदेही-बन्धु की बिरह-व्यथा की उक्त कथा तो वर्षो बीते हुए काल की कही है सिद्धि ने । अतएव जानकी जीवन को असमय में बिना कारण श्याल की गत स्थिति का अनुसरण नहीं करना चाहिए । वर्तमान में आपके आत्म सखा अपनी अनुजा भवन उनसे मिलने गये हैं क्योंकि भ्राता भगिनि की प्रीति अनिर्वच. अप्रतिम और अनन्त है । एक दूसरे के दर्शन बिना असहिष्णुता का अनुभव करने लगते हैं दोनों । अब आते ही होंगे आपके सखा । यहीं आकर अपने भाम के दर्शन की आतुरता को शान्त करेंगे वे, अतः आपको जाने की आवश्यकता नहीं, आपकी अभीष्ट वस्तु आपको आपके आँगन में ही मिल जायेगी ।"

'अहो ! भ्रम के बीहड़ वन में भटकते-भटकते राम स्वयं में भ्रम करके भ्रम मूर्ति बन गया था किन्तु अपने ज्ञानालोक से श्याल-वधू ने विभ्रान्त कर स्वपति सह वार्तालाप करने का अवसर पुनः संप्राप्य करा दिया राम को, अतएव क्या कृतज्ञता ज्ञापन करूँ तदनुकूल शब्द की अपर्याप्ति से । अतः राम स्वयं विदेह नगरी के युवराज युवराज्ञी की नियत वस्तु होने के कारण उन्हीं के आधीन है ।"

"रघुनन्दन के उक्त वाक् विसर्ग की अन्तिम वेला होते-होते आपश्री ने वहाँ स्वयं पधार कर अपने प्राणप्रिय भाम के संतप्त नेत्रों को स्वदर्शन के ठण्डे जल से शीतलत्व प्रदान किया था । श्याल-भाम की अप्रतिम, अचिन्त्य, अपरिमेय और अतर्क प्रीति सिन्धु के सीकरांश में उस समय स्थित समाज अस्त हो गया था, जो आपश्री से अविदित नहीं है । यद्यपि इस अन्तर कथा का ज्ञान दासी ने अपने जीवन सर्वस्व को समास रूप से करा दिया था तथापि कथा क्रम में श्रोता के आसन में पधारे कथा-रसिक को पुनः विस्तार तया श्रवण कराने की सेवा आज भी बन गई उससे ।

इस प्रकार अपनी वल्लभा के मुख से श्रीराम की प्रेम गाथा श्रवण कर श्री लक्ष्मीनिधि प्रेम परवश विभोर बन गये । कुछ काल में कथा श्रवण करने की अभीप्सा ने उन्हें धीरज बँधा कर पुनः श्रोता के आसन में स्थित कर दिया ।

× × ×

४४

अन्तःपुर के अन्तराल में अपने प्राणनाथ वैदेही बन्धु का अभेदत्व प्रकट करता हुआ सर्वाङ्ग सुन्दर चित्ताकर्षक चित्र सिद्धा से संपूजित इसलिये प्रतिष्ठित है कि सिद्धि अपने सर्वेश्वर से एकान्तिक दर्शन, वार्तालाप, संयोग और परम सेव्य की सेवा का लाभ कार्यवश उनके अन्तःपुर से बाहर चले जाने पर भी कर सके। अहो! प्रतिबिम्ब की अनुपस्थिति में प्रतिबिम्ब ही तो सर्व विधि समर्पित अनन्या नारी के श्वांस का संचालक सिद्ध होता है अन्यथा असमय में वह विरह कातरा अपने को खोकर भविष्य में अपने कैंकर्य कौशल्य से सहज सेव्य को सुख पहुँचाने में असमर्थ ही रहेगी।

स्वर्ण भीति से आधारित रत्नजटित मन्दिराकार स्वर्ण आलमारी में विराजित मिथिला के युवराज का चित्र अपनी शोभाश्री से कक्ष की भव्यता में और-और निखार ला रहा था, प्रकाश पुन्ज की प्रकाश किरणें चारों ओर जगजगाहट उत्पन्न कर रही थीं। अन्तःपुर के अन्तराल में अन्तर्मुखी होकर अन्तर्साधना करने के लिए उक्त कक्ष उपयुक्त था, अन्तर्द्वन्द्वोत्पन्न करने वाली प्राकृतिक सामग्रियों का अभाव और साधन को निर्विघ्न समुन्नतशील बनाने वाली सहायक सामग्रियों की समुपलब्धि सहज थी श्रुति शास्त्रानुसार।

स्व श्याल-वधू का वह अन्तर्साधना गृह वैदेही-बन्धु-मुख से उनके भाम के कर्णों का विषय बन चुका था। अतः समय पाकर ···

"क्यों चित्रा जी! अभी तक अपने से आपको छिपाने की प्रक्रिया, प्रभा को प्रभाकर से गुप्त रखने की भाँति चल रही है और आपसे अकिंचित अन्तर है, यथा अन्तर्यामी से अन्तर्भाव का बार-बार कहना राम की वञ्चना नहीं है क्या? स्पष्ट कहें, कौन, किस प्राणी, पदार्थ और परिस्थिति को गुप्त रखना चाहता है सर्वात्मा राम से?"

'राम की सलोनी सर्वगुणागरी जगदेक सुन्दरी श्याल-वधू ने अपने अन्तःपुर के अन्तराल में अन्तर्मुखी दृष्टि अपना कर अन्तर्साधना करने के परमैकान्तिक कक्ष का देव दुर्लभ दर्शन अब तक अपने ननदोई को नहीं कराया इससे तो भेद की भावना सहज ही सिद्ध है, हाँ राम के प्राणप्रिय आत्म-सखा ने अपने आत्माधिक सुहृद से अपने आप उस गुप्त कक्ष की चर्चा करके अन्तर्हीन एकत्व का प्रमाणीकरण किया है, अवश्य!"

"वैदेही-बन्धु की, की हुई कक्ष चर्चा उनके वधू की ही की हुई है क्योंकि वे दोनों दो नहीं अपितु एक हैं, इसका अर्थ आपश्री से अज्ञापित नहीं

है, अतः उस कक्ष की प्रशंसा आत्म महिमा का द्योतक समझकर अहं का आमन्त्रण न करने के लिए अपने प्राणप्रिय अतिथि से नहीं की है। यद्यपि उक्त स्व और पर की वार्ता का रहस्यार्थ समझते हैं सर्वभावेन सीताकान्त। किन्तु न जाने उनकी वाणी किस छिपे रहस्य का उद्घाटन करने के लिए अपनी सरहज को कपटपूर्णा किंकरी के आसन में बैठाने का नाट्य कर रही है, जैसे स्वयं संत श्रुति शास्त्रानुमोदित, ''कपट मानुषः'' विद्वानों से जाने जाते हैं वैसे ही अपने स्वजनों को भी जानना वैदेही-वल्लभ का स्वरूपगत धर्म ही तो है—लोकोक्ति है कि—

संत, लवार, चोर, मुनि ज्ञानी।
जस आपन तस औरहिं जानी॥

मन्दस्मिता तिरछी चितवनि से निज ननदोई की ओर देखते हुए सिद्धि कुँवरी ने कहा।''

''अच्छा! 'उलटे चोर धनिक को डांटे' की कहावत चरितार्थ कर स्वयं निर्दोष बनने का पाठ पढ़ने लगीं राम की श्याल-वधू! चलिये! अभ्यंतर से राम का अन्तर करना असिद्ध नहीं हो रहा है सिद्धि कुँवरी जी के वाक् चातुर्य से।''

''सिद्धि के सर्वस्व तो चतुर चूड़ामणि हैं, उनकी चौर्य पटुता के आगे उनसे कोई क्या चुरा कर रख सकता हैं अपने समीप। अच्छा है लाल साहब अपने को अपने से अपने में देखने से सिद्धि को शुद्ध हृदया और अपने को सुख संभोक्ता समझेंगे तो अविलम्ब चलने की कृपा करें अन्तःपुर के अन्त-राल में।''

''चित्रे! नृत्य, गान, वाद्य ध्वनि के साथ उक्त भवन में अपने अतिथि को प्रवेश कराने के लिए स्वरूपानुकूल तैयारी करो।''

''स्वामिनी जू के चित्त की स्थिति समझकर चित्रा ने संकेत से सखियों को उक्त व्यापार में लगा दिया है, मधुर मेहमान से पधारने की प्रार्थना करें आप श्री।''

'प्यारे पधारें अन्तःपुर के अन्तःकक्ष को, रघुनन्दन की अँगुली पकड़-कर चित्तापहारी चितवनि से लक्ष्मीनिधि-वल्लभा के कहने पर उसके ननदोई उठ कर चल पड़े।''

''समाज को समुल्लसित करते हुए सम्मान व उत्सव के साथ सीता सुख संवर्धक राम कक्ष में पहुँचकर संपूजित हुए सिद्धि कुँवरी से, सविधि सप्रेम आसन पाद्यादि समर्पण द्वारा।''

"अहह ! अन्तःपुर का यह अन्तःकक्ष राम को अन्तः प्रवेश देकर परिकरों से वार्तालाप न करने देगा क्या ? बहिर्मुख को भी अन्तर्मुख कराने में सक्षम सिद्धि सदन का यह अन्तर्कक्ष अवश्यमेव आत्म स्थिति के समान भव-रस का शोषक और अनन्त रस का पोषक प्रत्यक्ष प्रतीत हो रहा है, तभी तो लक्ष्मीनिधि वल्लभा का परमार्थ वैभव त्रिभुवन वासी सुर-नर, मुनि समुदाय को स्पृहणीय सिद्ध हो रहा है, राम के अनुभूत उक्त विषय में बहूक्ति का अल्पांश नहीं अपितु अनिर्वचनीय कहकर इसकी यथार्थता की झलक श्रोता के बुद्धि में प्रविष्ट करायी जा सकती है, आपके प्राणातिथि को आज यह आतिथ्य-वैलक्षण्य लिये जा रहा है अव्यय नव नव अनन्तानन्द की ओर।"

"जहाँ से आनन्द की धारा प्रवाहित होकर आनन्द की अनुभूति करा रही आनन्दकन्द को। वहाँ उसके उद्‌गम स्थान का समीक्षण करके तदविषयक वार्ता को समझने में विलम्ब न होगा सिद्धि के सर्वस्व को।"

"विलम्ब न करें अमृतानन्द की धारा का दर्शन कराने में, क्योंकि राम स्वयं को खोता सा जा रहा है"

[मन्दिराकार आलमारी का बाह्य आवरण अलग करके]

देखें यह मधुरातिमधुर मूर्ति सिद्धि के ननदोई के श्याल की है, जिनके हृद्‌देश में उनके भगिनि-भाम श्री सीताराम की अत्यन्त मधुर मन-मोहिनी मूर्ति झीने पट के भीतर जैसे झलमल-झलमल करती हुई विराज रही है, बस इस कक्ष की महत्ता का प्रभाव इन्हीं त्रय मूर्तियों के प्रभाव से प्रभावित है, नाम मात्र कुछ नहीं है यहाँ सिद्धि का, भक्त और भगवान का भागवदत्व और भगवदत्व मात्र प्रतिष्ठित है यहाँ। सिद्धि कुवँरि ने कहा।"

"अहो ! यह मिथिलेश कुमार हैं ? आँख में रखने लायक इनकी काय सम्पत्ति है। आश्चर्य ! प्रतिचित्र कितनी कलाकारी से विनिर्मित किया गया है कि जिसे देखकर साक्षात् का भ्रम उत्पन्न हो जाने में कुछ क्षणों से अधिक नहीं लगेगा।"

सस्नेह देखते-देखते स्वयं सर्वज्ञ को अल्पज्ञ की भाँति श्री लक्ष्मीनिधि के चित्र में उनके साक्षात् जैसा आभास अनुभव में आने लगा, धीरे-धीरे चित्र के स्थान पर भाम राम को श्याल का साक्षात् सा ज्ञान स्थित हो गया।

"अहो ! प्राणप्रिय निमिनन्दन ! आपकी प्राण प्रियतमा से सादर आमन्त्रित होकर आज आपका आत्म सखा उनके अन्तःपुर के अन्तर्कक्ष के

अन्तराल में स्थित अन्तर्साधना के स्थल पर आते ही आनन्द सिन्धु से आवृत हो गया, पुनः अपने श्याल के सुन्दर सुमुखारविन्दु का दर्शन करके उसके सुख-सिन्धु में अत्यधिक परिवृद्धि हो जाने से आत्मविस्मृति के आसन को अलंकृत करना चाहता है वह, और आप प्रसन्नमुद्रा में बैठे हुए अपने प्राणाधिक की छटपटाहट देख-देखकर भी मन्द मुसुकान के साथ उसकी अवहेलना कर रहे हैं, ऐसी निष्ठुरता का आवास कोमलातिकोमल हृदय में कैसे हो गया ? आइये ! अविलम्ब आइये ! अपना हृदयालिङ्गन देकर अपने भाम के शोक का शमन करें। अहो ! आपका औदार्य निमिकुल के अनुरूप रहा है उसमें न्यूनता का दर्शन असह्य होगा राम को। भाम से क्या अपराध हो गया है श्याल का ? जिससे मुख विनिश्रित वाक् सुधा का पान कराना उचित नहीं समझते अपने अतिथि को। हाय कष्ट ! महाकष्ट ! जिससे इतना सम्मान मिला कि वह अवर्णनीय है, उससे इतना अपमान मिलेगा, अज्ञात था। श्याल-वधू भी स्वपति परमेश्वर से कुछ नहीं कह रही हैं, अपने ननदोई के आनन्द विवर्धन हेतु क्या हो गया सबको ? अभी तक सभी स्वजन अपने राम के सुख को स्वसुख मानते थे। हाय ! हाय !'' कहकर लुढ़क गये आसन पर जनक के जमाई।

इसी सन्दर्भ में मिथिलेश कुमार वहाँ पहुँच गये जहाँ उनके राम उनसे मिलने के अभाव में अन्तर्पीड़ा का अनुभव कर रहे थे। राम, सिद्धि के साधना कक्ष गये हैं यह जानकारी उनके प्रियतमा की भेजी हुई सेविका से हो गयी थी, प्रथम ही, अस्तु, वे आये प्रिय सम्बन्धी को सुखी करने किन्तु विपरीतता का दर्शन कर

''अरे ! यह क्या हो गया आनन्दमूर्ति को ? शोक संविग्न हृदय से, हाय ! सखे ! इत्यादि शब्द कैसे निकल रहे हैं, उनकी श्याल-वधू की उपस्थिति में ?'' साश्रु कम्पित वदन गद्‌गद वाणी में सिद्धि के स्वामी ने कहा।

''कक्ष संस्थित आप श्री के इस चित्र सौन्दर्य के संदर्शन ने आपके आत्मप्रिय सीताकान्त को प्रीति परवशता के कारण चित्र में आप श्री के साक्षात् का भ्रम उत्पन्न कर दिया है, अस्तु, चित्र से वार्तालाप करने की स्थिति में उधर से उत्तर न आना अस्वाभाविक नहीं है, इसलिए अपने प्रिय श्याल के न बोलने का भ्रम बुद्धि में बैठकर उन्हें अस्वस्थता की खाई में गिरा रहा है. अतएव प्राणेश्वर ! शीघ्र अपनी मधुर वाणी का अमृत घोल वैदेही-वल्लभ के कर्णों में उड़ेल कर उन्हें प्रकृतिस्थ करने की कृपा

करें, जिससे श्यामसुन्दर का विकसित मुख कमल दर्शन कर सुख की अनुभूति करें हम सब । सिद्धि कुवँरि ने साश्रु कहा ।''

''अपने श्याल के सर्वस्व ! समाधि स्थिति से उपरत होकर अपने श्याल को अपना आलिङ्गन दें और स्वयं सुखी होकर उसे सुखी करें। कब से खड़ा है वह आप श्री के काय वैभव का अनुभव करने के लिए ।''

अपने अभिन्न सखा की मधुर वाणी श्रवण पड़ने ही हृदय-हरण ने आँख खोली तो देखा कि उनके नयनानन्द के दाता सीताग्रज सामने खड़े हैं। युगल नरपति कुमार हृदयाबद्ध होकर नेह की नदी में बह गये। कुछ समय के पश्चात धैर्य धारण कर दोनों सिद्धि कुवँरि से सेवित सिंहासनासीन परस्पर मधुर-मधुर प्रेम भरी बातें करने लगे।

'आपसे, अपने समीप आकर अपना आलिङ्गन देने के लिए कितना कहा आतुरता से भरकर, किन्तु आप अपने इस प्राणाधिक सखा से बोले तक नहीं, अपितु अपने भाम की आकुलता देख-देख मन्द-मन्द मुस्कराकर मजा लेते रहे। अपने गृह आने पर अतिथि का सम्मान न करना कैसे सह्य हो गया आपसे ।''

''श्यामसुन्दर का यह प्रिय सखा यहाँ था ही नहीं, वह कैसे स्वप्राण-प्रिय सत्कारार्ह सम्बन्धी का शिष्टाचारपूर्ण सत्कार करता ?''

''आपके भाम ने अपने श्याल को यहाँ आते ही देखा कि उच्चासन पर बैठे हुए अपनी श्री शोभा से कक्ष की सुन्दरता का संवर्धन कर रहे हैं, अनुनय-विनय करने पर भी विदेह कुमार अपने आतम सखा को आश्वस्त न कर सके, साश्रु जानकी-जीवन ने कहा ।''

''नहीं, नहीं, ऐसा नहीं, राम के अदर्शन के असह्यकारी अक्षम्य अपराध उनके निज जन से स्वप्न में या भूलकर भी होना संभव नहीं क्योंकि वह अपने आराध्य से सर्वदा सुरक्षित रहता है। ज्ञात हुआ आपकी श्याल वधू से कि अन्त कक्ष में आते ही भाम ने अपने श्याल के तदनुरूप चित्र को देखकर वैदेही-बन्धु के साक्षात्कार जैसा ज्ञान बुद्धि में आरोपित कर लिया था, जिससे तदनुसार वार्ताओं के विनियोग द्वारा चित्र से प्रत्युत्तर न मिलने पर तद्दुःख से अभिभूत होकर स्मृतिशून्य असह्य कष्ट का अनुभव करना पड़ा है भाम को, अतएव स्वजनों के सर्वस्व ! अपने जन की प्रगाढ़ प्रीति की सरिता में बहकर ही प्रतिबिम्ब में बिम्ब का आरोप कर लिये. और दुसह दुख की अनुभूति कर करके स्वयं स्मृतिहीन हो गये, किन्तु, धिक्कार है ! इस श्याल कहाने वाले श्यामसुन्दर के स्वजन को, जो स्वयं

को प्रेम-विकृतियों से अपने को बचाकर अपने पर इतना अत्यधिक स्नेह करने वाले सर्वस्व को अपने बुद्धि-कौशल्य से समझाकर उन्हें प्रकृतिस्थ करने का प्रदर्शन करा रहा है उनके स्नेहासिक्त परिकरों को, साश्रु मिथिलेश कुमार ने कहा।''

''तो आप यहाँ नहीं थे, अहो ! अपने श्याल जैसा किसे देखा ? अब भी जिसकी अनुभूति पृथक् नहीं हुई चित्त से।''

''यह वैदेह-बन्धु तो अभी-अभी आया है, आपकी दैन्यदशा की कथा श्रवण कर। आकर अपने भाम को स्वयं उस स्थिति से पृथक् करने के प्रयास को सफल पाया। अन्यथा आपके परिकरों की दयनीय दशा जो अपने सर्वस्व का अनुकरण करने वाली थी, परिर्वधित होकर कहाँ से कहाँ ले जाती ? क्या से क्या कर देती ? बुद्धि अनुमान नहीं कर सकती।''

'स्वजन वत्सल ! निरीक्षण करें इसी चारुतम चित्र का दर्शन आपकी श्याल-वधू ने कराया था कि नहीं ? समीक्षण करने पर ज्ञानमूर्ति को यह निश्चय हो जायेगा कि स्वयं के प्रेम-प्राबल्य ने ही छाया में उसके साक्षात् पुरुष का भ्रम उत्पन्न कर दिया है। सखा आपके बात कर रहे हैं अपने आत्माधार से और चित्र उनका आलमारी में स्थित है, सिद्धि कुवँरि ने कहा।''

''अवश्यमेव अपने आत्मप्रिय सखा का यह सुन्दर सजीला चित्र है, अहो ! कलाकार के कौशल्य की बलिहारी है, जिसने प्रतिबिम्ब में बिम्ब का अनुभव कराकर राम को भ्रम के वन में विहरने के लिए बाध्य कर दिया है।''

प्राणप्रिय कुसुम कोमल सिरस सुकुमार निमिकुल नागर को निष्ठुर आदि कठोर शब्दों की कटीली माला पहनाकर उनके उर-स्थल को कितना कष्ट पहुँचाया राम ने।''

[लक्ष्मीनिधि जी वैदेही-वल्लभ को हृदय में लेकर]

''दुग्ध व रस भरे पात्र से जो निकलता है, वह दुग्ध व रस के अतिरिक्त अन्य नहीं होता है, रघुनन्दन ! प्रति सम्बन्धी को वह सहज ही सुख स्वरूप होता है, अतएव उक्त कल्पना का स्थान न दें मन में। समुद्र की लहरें उठकर समुद्र ही में यथाविलीन होती हैं तथा भुवन-भास्कर भाम की वचन-किरणें उनके आत्मा श्याल को लक्ष्य करके निकलीं और पुनः आत्मा में ही समाविष्ट हो गई। यह तो आपका भोग्य है, भोक्ता यथारुचि उसे भोगने में परम स्वतन्त्र है, अतएव उक्त विचारों की उपज मन की उर्वरा भूमि में उत्पन्न कर संताप के अन्न का अनुभव न करें आप श्री।''

श्याल भाम सोते से जाग जाते के समान पुनः प्रेम-प्रक्रिया की अभिव्यक्ति से परिकरों को सुख-सिन्धु में समाविष्ट करने लगे। यह तो, प्राणनाथ ! स्वयं अनुभूति की हुई स्थिति से परिचित ही है, इसके प्रथम श्याल प्रति भाम की अचिन्त्य एवं अपरिमित प्रीति का आंशिक वर्णन दासी ने कर ही दिया है।

इस प्रकार अपनी वल्लभा के मुख स्वयं के प्रति सीताकान्त की प्रेम-कहानी श्रवण कर नेह की नदी में बह गये और पुनः धीरज का सहारा लेकर श्रीराम की रहस्य गाथा श्रवण करने के लिए समुत्सुक हो गये।

× × ×

४५

जहाँ के निवासियों का अनुयायी परमानन्द हो, जो सहज ही उनके सुख-सम्वर्धक-संभोगों को स्वयं संयोजित करना स्वरूपगत धर्म समझता हो, वहाँ दुःख की संज्ञा संयोजित रहेगी ? कदापि नहीं। यथा-प्रकाश स्वरूप भुवन भास्कर सूर्य भगवान में सर्वदा अन्धकार अविद्यमान ही रहता है, तथा सच्चे आत्मानुरूप आनन्द में प्रकृति-जन्य प्रकृति-प्रदेश के दुःखों की छाया की भी कल्पना की जा सकती।

"ऐसी अष्टचक्रा नवद्वारा सरयू तट संस्थिता आदिपुरी अयोध्या के सम्मुख किसी भाव से आने का विचार मन में करते ही सारे शोक-सन्ताप, दुःख दोष आने वाले का साथ छोड़कर पुनः उसके समक्ष आने का स्वप्न नहीं देखते स्वयं भय से आक्रान्त हो जाते हैं, जैसे मार्जारी के मुख से म्याऊँ शब्द सुनते ही मूषक। प्रकृति साम्राज्य के प्रबल से प्रबल शत्रुओं का समुच्य, नगरी के आंशिक शक्ति के दृष्टिपात से भस्मीभूत हो जाता है, इसी से श्रुतियों, शास्त्रों और सन्तों के श्रीमुख से नगरी का अन्य नाम अपराजिता कहा गया है। नगर के विनिर्मित भव्य भवन विमानाकार गोपुरों से सुशोभित अपनी कनक भीति में जटित मणि, माणिक, हीरा, प्रवाल; पुख-राज आदि रत्नों की ज्योति से रात्रि में दिन का भ्रम उत्पन्न करने में बड़े कुशल हैं। राज भवनों की राजश्री साक्षात् सुरपति सदन की श्री सम्पत्ति को स्वचरणों में लौटने के लिए विवश कर देती है, उनमें भी कनक भवन की श्री शोभा लोकातीत है, सुमेरु पर्वत के स्वर्ण शिखरों में पड़ती सूर्य-किरणों से समुत्पन्न भासा की उपमा देने से उपमान का अनादर सिद्ध होगा। सप्तावरण कनक भवन की भव्य वाटिकाओं और द्वार प्रदेशों में आरोपित

भूरूह, लता गुल्म आदि अपनी पत्र, पुष्प और फल सम्पत्ति से सर्वदा सेवन कर करके सेव्य का मुख विकसित बनाये रखते और स्वयं बारहों मास बसंत की बहार के सुख से प्रफुल्लित वदन बने रहते हैं। सरोरुह से संयुक्त सर, सरसी, कूप, बावड़ी और फव्वारे बड़े ही रमणीक यत्र-तत्र सदन की शोभा का सम्वर्धन कर रहे हैं, कीर, कोयल, मोर; चातक, हंस, पारावत आदि पक्षी अपने कलरव से सबका मनोरञ्जन कर-करके अपने भाग्य-वैभव की सूचना दे रहे हैं। अतः सर्वभावेन सर्वदा सुखावह "कनक भवन" त्रिभुवन वन्दनीय एवं स्पृहणीय है; वहाँ अगणित दासी-दास, सखी-सखाओं से संसेवित, भाभी के ननँद ननदोई आनन्द की साकार मूर्ति बनकर सदा दर्शकों के दृष्टि के विषय बने रहते हैं।

कनक बिहारी बिहारिणी के कैङ्कर्य में निरत परिकर वृन्द उनके मुखाम्भोज को सदा एक रस विकसित परागपूर्ण बनाये रहने में सर्वथा समर्थ हैं। उक्त सदन के अन्तःपुर में एक अन्तः सभा कक्ष है, जिसके मध्य रत्न वेदिका पर रत्न जटित स्वर्ण सिंहासन है, जिसमें भैया के भगिनि-भाम परिकर वृन्दों से सेव्यमान विराजते हैं, इस नित्य उत्सवानन्द की प्राप्ति के लिए समस्त अन्त पुर समुत्सुक बना रहता है, उसे नित्य नव-नव सुख की अनुभूति करने की पिपासा वरण किये रहती है। देव एवं वधूटियों को दुर्लभ, श्री शिव-शिवा के परम जाप्य के अर्थ साकार को एवं श्रुति के सार-तम तत्व [रसो वै सः] को अपने नेत्रों का विषय बनाकर, [क्रीडार्थक रम् धातु को चरितार्थ कर] वह अप्राकृत अन्तःपुर अहर्निशि आनन्द का अनुभव कर रमता रहे उसके साथ उसी में, तो कौन आश्चर्य है? आनन्द! आनन्द!!

"एक दिन रजनी-मुख की बेला में अयोध्या के चक्रवर्ती कुमार निमि-वंश कुमारी के साथ उपर्युक्त सिंहासन में आसीन थे। चन्द्रकला, चारुशीला, लक्ष्मणा, सुभगा, हेमा, क्षेमा, मदन मञ्जरी, दरारोहा आदि निमिकुलोत्पन्ना कुमारियाँ अन्य अनेक सखी-सेविकाओं से संयुक्त, छत्र, चँवर, वीजन, दर्पण, माला, चन्दन, इत्र, पान और छड़ी, मंगल थाल आदि लिए युगल सिंहासन-स्थों की सेवा में तत्पर थीं। सेव्यमानों की सद्यः प्रफुल्ल मुख-पंकज श्री सेवि-काओं की मुख-मुद्रा को आनन्द से आपूरित कर रही थी सर्वभावेन। वैदेही ने भ्रातृ-वधू से कहा।"

"इच्छा हो रही है कि निमिकुल नन्दन एवं श्रीधर नन्दिनी जी के चारुतम चरित्रों की सुधा माधुरी कर्ण के द्रोणों में भर-भर कर पियें, अतएव

वीणा वादिनि चन्द्रकला जी के चन्द्र-मुख की किरणों से निर्झरित आत्म-प्रिय की कथा-सुधा पीने को प्राप्त हो जाएँ तो उनके वियोग-वह्नि से संतप्त राम का हृदय कुछ हरा हो जायेगा । अहो ! उन दोनों का अप्रतिम प्रेम, समर्पण, सेवा-संप्रीति, अनन्यत्व, अनन्य प्रयोजनत्व और निष्कामत्व जगत् के मूल कारण परब्रह्म परमात्मा को धराधाम में लाकर सबके सम्मुख खड़ा कर देने में समर्थ है, अर्थात् निराकार को साकार निर्गुण को सगुण, अमूर्त को मूर्तवत्, अगोचर को गोचर, इन्द्रियातीत को इन्द्रियों का विषय, असंग को स्वसंगी, सम्बन्ध शून्य को स्वसम्बन्धी बनाने की क्षमता रखकर समस्त-सुर-नर-मुनि समुदाय को आश्चर्यान्वित कर सकता है। कौशल कुमार ने स्नेहार्त होकर गद्‌गद् वाणी में कहा ।''

''मिथिला-प्रिय माधुर्य महोदधि को मिथिला-माधुरी पान की मधुरिम पिपासा सर्वदा वरण किये रहती है, उसमें भी मैथिल किशोरियों के भ्राता-भाभी के चरित-चन्द्रिका की सुधा तो रसराज को भी अपनी ओर आकर्षित कर अन्य के स्मरण का अवसर ही नहीं देती । धन्य है ! जन-मन रञ्जन जू के स्वजन स्नेह को । आप श्री की आज्ञा का अनुवर्तन आप श्री के सुख-समृद्धि के लिए आपकी अनुयायिनी चन्द्रकला अविलम्ब कर रही है। स्वामिनी जू की भी इच्छा यही है, उनके संकेत से ज्ञात हो गया है अनुचरी को।''

"सिद्धि कुवँरि मिथिलेश कुँवर सोउ ।
अवध विहारी-विहारिन के रस, भूले भव रस प्रीति पगे दोउ ।
अन्य न देखत सुनत अन्य नहिं, अन्य न जानत राम विना कोउ ॥
नाम-रूप-लीला रत प्रिय के, बहत वारि दृग अह मम को खोउ ।
'रा' अस कहत भूमि सुधि सिगरी, 'म' नहिं निकसत मधुर मुखहिं ओउ ॥
सिय सुधि आय हृदय में हा हा, मूर्छित करति न ज्ञान जियहिं जोउ ।
दयित मिलन की आस जियावति, युगल माधुरी पीहैं मधु मोउ ॥
हर्षण यहि विधि विरह के वारिध, अस्त उदय होवत रस दोउ ।''

''इस प्रकार निर्मल, निष्काम, प्रतिक्षण प्रवर्धमान प्रेम, भ्राता-भाभी का, अपने प्रेमास्पद को अपना स्मरण करने के लिए विवश कर दे, तो कौन आश्चर्य है ? भैया की चरित्र चन्द्रिका की चाँदनी सभी मिथिला वासियों को अपने सुधा-शीतल प्रकाश से प्रियत्व, अमृतत्व आदि प्रदान कर उनको अपनी ओर आकर्षित करती रहती है अहर्निश, क्योंकि निमिकुल-वंश विभूषण वैदेही-बन्धु का चरित-चन्द्र सबके हृदय-गगन में एक सा उदित बना रहता

है, वहाँ नाम नहीं है अस्त का। सदा जय हो चन्द्र कीर्ति हमारे भैया जी की ! चन्द्रकला जी ने कहा।"

"अहो ! सीताग्रज के हृदय भवन में उनके आराध्य की अकारण अनुकम्पा से विशुद्ध भागवद्धर्म अपना आवास बनाकर स्वसुख की संप्राप्ति से सदा संपुष्ट और संवर्धित होता रहता है, लगता है कि उनके इष्टदेव भी अपने अनन्त कल्याण गुण गणों से संयुक्त निजी निकुञ्ज बनाकर वहीं निवास करते हैं, तभी तो भैया का हृदय देश दिव्य देव मन्दिर से अतिरिक्त और कुछ नहीं जान पड़ता, लोगों को अपने दर्शन मात्र से सुखी कर देने का यही कारण है। भैया की प्रतिभा एवं प्रभाव अपने पूर्वजों एवं पिता श्री निमिकुल नरेश से न्यून नहीं प्रतीत होता सुर-नर-मुनि समुदाय में। कुलागत ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य और योग विभूतियाँ तो उन्हें सहज ही वरण किये हैं, आत्म-विशारदत्व का प्रमाणपत्र भी पूर्वजों की भाँति सभी दीर्घ-दर्शी ब्रह्मविद् वरिष्ठों से उन्हें ससम्मान संप्राप्त ही है, हाँ, भैया में एक विशेषता अवश्य है, वह परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान की विशुद्ध प्रेमाभक्ति। यही कारण है कि कभी-कभी एकान्त में सिद्ध लोग स्वयं आकर उनसे मिलते हैं, तथा परस्पर प्रेम विषयक वार्ता कर-करके स्वसुख का संवर्धन करते हैं, चारुशीला ने कहा।"

"अहह ! स्व भ्रातृ-कीर्ति की धवल ध्वजा फहराकर आकाश के नीचे रहने वाले त्रिभुवन-वासियों ने नेत्रों व श्रवणों का विषय बन रही है, निमिकुल नरेशों के आचार्य प्रवर योगिवर्य श्री याज्ञवल्क्य जी महाराज की असीम अनुकम्पा से। भैया का सर्वसमर्पण, आचार्यानुरक्ति, सेवा परायणता, आज्ञानुवर्तन, अनुष्ठान परायणता, भागवद्धर्मानुकूलता, ईश्वरानुरक्ति एवं ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग की सहज संस्थिति क्षात्र धर्म इत्यादि के "स्वसच्छिष्याय स्व सर्वस्वं प्रदाष्यामि" की प्रतिज्ञा करने के लिए आचार्य श्री को बाध्य कर दिये हैं।

"शत पुत्र समः शिष्यः" का अर्थ श्रीसद्गुरुदेव याज्ञवल्क्य जी महाराज ने अपने भैया के प्रति प्रत्यक्ष सबके नेत्रों का विषय बना दिया है, अतएव आचार्य कृपाधिकारी पर परमात्मा स्वयं रीझा रहे तो कौन आश्चर्य है ? हेमा जी ने कहा।"

"मातृ देवो भव ! पितृ देवो भव !" वेदाज्ञा का प्रीति, प्रतीति और सुरीति के साथ सर्वभावेन पालन तो अपने भैया जी में, "आचार्य देवो भव" से कम किसी को कभी देखने को नहीं मिला, अन्वेषण करने पर भी।

अतएव वे अपने जननी-जनक के असीम प्यार और अमोघ आशीर्वाद पाने के प्रिय पात्र हैं। उनकी चर्या से पिता-माता ही नहीं, सभी ऋषि, मुनि, देव, पितर, अतिथि और पुरजन परिजन परम प्रसन्न रहा करते हैं। अहह ! अपने भैया का कीर्ति चन्द्र सदा अकलंकित और राहु से अग्राह्य बना रहता है। हम सब धन्य हैं, जिन्हें उनकी बहन बनने का सौभाग्य संप्राप्त हुआ है, क्षेमा जी ने कहा।"

"अहह ! भैया जी कितने लोकप्रिय हैं ? राजा शब्दके अर्थ-रहस्य ने उन्हें ही वरण किया है वास्तव में। राजकार्य की पटुता, सभी सचिवों सहित महाराज मिथिलेश को केवल प्रसन्न करने वाली ही हो सो नहीं अपितु उन्हें आश्चर्य का स्पर्श कराकर गंभीर बनाने वाली सिद्ध होती है, पूर्वजों का पूर्ण आशीर्वाद ही निमिकुल कुमार के रूप में वर्तमान मिथिला महाराज को प्राप्त हुआ है, श्री सुभगा जी ने कहा।"

"भैया की ब्राह्मी स्थिति एवं ब्रह्ममय जगत को देखते हुए तदनुसार व्यवहारिक क्रियाओं का सम्पादन कितने सुन्दर, सुढंग और छिद्र-हीनता के साथ होता है। जिसे देखकर ऋषियों-मुनियों को भी संकोच को अपने हृदय में स्थान देना पड़ता है। अहं और मम का समूल विनाश हो जाने के कारण भैया से द्वन्द्वों की भेंट ही नहीं होती। यही कारण है कि उनका काय वैभव भी अन्तर्गुणों का अनुसरण करता हुआ चमत्कृत हो रहा है, स्वतेज से देदीप्यमान हो रहे. हैं वे, यह तो प्रत्यक्ष सबके दृष्टि का विषय है, हम सब कितनी भाग्यशालिनी हैं कि उनकी अनुजा हैं और तदनुकूल उनका लाड़-प्यार पा रही हैं। वरारोहा जी ने कहा।"

"अहो ! भैया जी क्षात्रधर्म निष्णात परम प्रतापी वीर हैं। श्री स्वामिनी जू के स्वयम्बर में आये हुए अन्यायी सकाशापुरी के राजा के साथ जब हमारे बड़े पिता श्री मन्महाराज के साथ घोर युद्ध छिड़ गया था, तब भैया जी के युद्ध-कला कौशल्य की भूरि-भूरि प्रशंसा नित्य मिथिला वासियों के श्रवण का विषय बनती थी। अन्त में विपक्षी राजा दाऊ जी के हाथ से मारा गया और सकाशापुरी के राज्य पर छोटे चाचा श्रीकुशध्वज जी को अभिषिक्त किया गया। आश्चर्य तो यह है कि भैया जी को किसी वर्ण-आश्रमानुमोदित श्रौत व स्मार्त कर्म के करने में आग्रह, आसक्ति, फलासा और कर्तापन का अभिमान आदि दोष स्पर्श नहीं कर पाते, इसलिए वे सदा असंग बने रहते हैं, जिससे उनके श्री, यश, तेज का नव-नव विवर्धन होता रहता है। मदन मञ्जरी जी ने कहा।"

हमारे अग्रज अपनी आभा-विभा और प्रतिभा से समन्वित वाणी की मधुरता से जब पशु पक्षियों के भी चित्ताकर्षक सिद्ध होते हैं, तब मनुष्यों की क्या कथा ? अहह ! जब भैया की वाणी से सङ्गीत-सुधा का स्रोत निर्झरित होता है, तब क्या कहना है. उनकी गांधर्व विद्या की उच्चतम स्थिति को देखकर तुम्बुरु आदि गन्धर्वों को दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ जाती है. वीणा वादिनि सरस्वती जी अपनी वीणा के तारों में कराङ्गुलियों का चलना रोक कर औचक कान लगाकर भैया की सङ्गीत सुधा-लहरी के अनुभव से वञ्चित न रहती होंगी।

इस प्रकार सर्व सल्लक्षण सम्पन्न हमारे भैया अपने भगिनि-भाम के विना विरह के काँटों से बिंधकर मिथिला के कटीले वन-बीहड़ में पड़े-पड़े कराह रहे होंगे। हाय कष्ट ! महाकष्ट !"

लक्ष्मणा जी कहती हुई आगे बोल न सकीं, मूर्छापन्न हो गईं, सभी समाज को उक्त दशा ने वरण करके स्मृतिशून्य बनाने में ही अपना गौरव समझा। पुनः समाज धीरे-धीरे अर्ध चेतना से युक्त होकर मिथिला के युवराज का स्मरण कर अश्रुविमोचन करने लगा।

श्याल-मुख-पङ्कज-पराग के रसिक मुग्ध मधुप का श्याल शरीर, गौराङ्ग श्याल की चरित्र-चंद्रिका की सुधा किरणों के प्रभाव से तदाकारिता के कारण ईषत् गौर-श्याम के रूप में दृष्टिगोचर होने लगा। रसिकाधिराज रसराज राम के दिव्य देह में युगपद रस और रसिक की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष दर्शन देने लगी परिकर वृन्दों को। भाम का अन्तःकरण श्याल गाथा को श्रवण करते-करते वैदेही-बन्धु के आकार का होकर तदनुसार चेष्टा करने के लिए भक्त-कथाहारी श्रोता को बाध्य कर दिया, अतएव श्याम सुन्दर अयोध्या के भवन में बैठे हुए भी गौर सुन्दर के भवन, मिथिला में बैठे हुए जैसे गौराङ्ग बनकर उन्हीं जैसी वार्ता का विनियोग करने लगे, तदाकारिता का तीव्रतम तेज जगमगा उठा, श्याल गौर हो गया, भाम श्याल हो गया, अयोध्या, मिथिला बन गई, वर्तमान में परिवर्तित हो गया। तदनुसार समीपस्थ विराजित वामाङ्गी विदेहजा जू को राम वल्लभा के रूप में नहीं, अपितु अपने को विदेह कुमार मानकर वैदेही को बहन के रूप में देखने लगे राम रघुनन्दन। [तदनुसार चेष्टा करने लगे भैया के भाम, किन्तु उनके भगिनि को संकोच ने धर दबाया और सिर उठाने का समय देने से उसे वञ्चित ही रखा वह।]

[जानकी जान जानकी जू को अपने अङ्क में लेकर प्यार की पयस्वनी में स्नान कराने लगे और श्याल में तदाकार वृत्ति हो जाने से उन्हीं के मुख विनिश्रित सी वार्ताओं का विनियोग करने लगे ।]

"अहो ! आज मुझ वैदेही-बन्धु के भाग्य-वैभव का अङ्कन कौन कर सकता है, जिसकी सम अतिशयता की अप्राप्ति से सभी आकाश के नीचे बसने वाले भाग्य-वैभव-सम्राट, अपनी ओर देखकर मस्तक उठाने का अवसर अपने को नहीं देते । क्योंकि त्रिभुवन धन्या, विश्व वन्द्या वैदेही अपनी अनुजा के रूप में विदेहात्मज को संप्राप्त हुई हैं, तदनुसार भैया की क्रोड़ उनकी क्रीड़ा स्थली है जो सीता की सुख-संवर्धिका सिद्ध है, अतएव यह उनका अग्रज सर्वभावेन कृतकृत्य हो गया । प्राप्तव्य को प्राप्त कर लिया ज्ञातव्य को ज्ञात कर लिया और इन महालक्ष्मी को प्राप्त कर निज नाम को चरितार्थ कर लिया । अस्तु, धन्य-धन्य हो गया । आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

[प्यार करके] "क्यों किशोरी जू । ये वस्त्राभूषण, ये क्रीडार्थक वस्तुएँ, ये पुष्पालङ्कार आपके लिए आपका भैया लाया है, आपको पसंद हैं या नहीं ? आपके अग्रज की चेष्टाएँ जो उनकी अनुजा को अवाञ्छनीय हों, उन्हें सहने के लिए विदेह कुमार सर्वभावेन असमर्थ है । अतएव अपनी लाड़िली जू को असंकोच स्पष्ट बतला देना चाहिए कि अमुक वस्तु पसन्द नहीं है । आपका भैया शीघ्र उसका परिवर्तन करके आपको आने वाली विशेष वस्तुओं के संग्रह की चेष्टा करेगा, क्योंकि वह स्वप्रयोजनशील नहीं है ।"

अरी लली जू ! अपने भैया से क्या संकोच करना, 'आप तो कुछ बोल नहीं रही है, यों तो आप सहज संकोचशीला हैं, किन्तु जिस अग्रज का चित्त सर्वभावेन अपनी अनुजा की सुख-संवर्धिनी सुविधाओं के सँजोने में "तत्सुख सुखित्वम्" की भावना में उलझा रहता हो, उससे अपनी प्रसन्नता की उत्पादिका अपने भैया की लायी हुई बाल-क्रीडा सहायिका वस्तुओं के बारे में उपादेय और अनुपादेय की वार्ता, लाड़िली अपनी अनुजा के मुख से विनिश्रित होनी ही चाहिए, जिससे सीताग्रज की चेष्टाएँ सीतामुख-पङ्कज के विकास हेतु सतत् सूर्य-किरणों का कार्य करती रहें ।

श्री अवध नरेश के कुमार का चित्त अपने को मिथलेश कुमार के आकार का बनाकर राम की आतमा को भी तद्रूप में परिणत कर लिया है, अतएव श्री मिथलेश नन्दिनी जू को अनुजा आदि सम्बोधन देकर तदनुसार

वार्ता का विनियोग कर रहे हैं कौशल्यानन्दन ! वह भी कौशलपुरी में स्वनाम धन्य कनक भवन के अन्तःपुर में। जानकर, चन्द्रकला, चारुशीला आदि सखियाँ मुस्कुराती हैं, कभी-कभी ताली बजाकर हँसने में भी नहीं चूकती। हाँ, स्वामिनी जू संकोच के गर्त में गिरती जायें, यह भी सह्य नहीं है उन्हें, किन्तु श्री रामवल्लभा जू की तिरछी चितवनि के सङ्केत से आनन्द सिन्धु में उछलती हुई उर्मियों को न उठने देने का प्रयास न किया जाए स्वयं से, समझने में विलम्ब न हुआ सखियों को। इसलिए वे सब रंगमञ्च पर चलती हुई रामलीला के रोकने में रोड़ा नहीं बनी। अपनी स्वामिनी जी के संकेत का अक्षरशः अनुवर्तन करने की लगन ने सबको वरण कर लिया।

मिथिलाधिप नन्दन में आवेशित चित्त ने अयोध्याधिप नन्दन को रामाकार से मुक्त कर सीताग्रज के रूप में परिवर्तित कर दिया है, अतएव श्री वैदेही का लाड़-प्यार वैदेही-बन्धु के सादृश्य को लेकर कर रहे हैं वे, किन्तु सब सखियों को हँसते देखकर उनके हँसने से असन्तुष्ट से हो जाने के कारण बोल उठे श्याल के भाम।

"क्यों चन्द्रकले ! ऐसे बाल्य-चापल्य का प्रदर्शन तुमने कभी अपने अग्रज के सम्मुख नहीं किया सब सखियों के साथ ? किन्तु आज अपने जानकी जान अनुजा जानकी के प्यार करने की वेला में अपने बड़े-बन्धु के मन को प्रेम-प्रक्रिया जनित आनन्द-सिन्धु से क्यों निकलने के लिए प्रयत्नशील हो रही हो तुम ? कोई बात अवश्य है जिससे हमारी प्राणों की प्राण किशोरी को भी संकुचित मुद्रा में स्थित कर दिया है उसने। कारण वार्ता अपने भैया के कर्णों तक अविलम्ब पहुँचाओ, अन्यथा आप सबका अग्रज विषाद के वन में भटकता, गिरता, पड़ता, चोट खाता हुआ अपने जीवन के अन्त का दर्शन कर ले तो कोई आश्चर्य नहीं।

'आज सबमें रमने वाले राम का चित्त किसी अनंग मोहक के स्वरूप में उलझ कर तद्रूप हो गया है, हृदय हर्षण जू ! यही कारण है सखियों के हँसने का, कि अखण्ड ज्ञानैक रस के ज्ञान गरिमा की गठरी गिर जाने से कैसी-कैसी प्रेम रस की सटपटी बातें सुनने को मिल रही हैं, सबको उनके श्रीमुख से।

"तो हमारे भाम राम जो वर्तमान में अयोध्या को ज्ञानलोक देकर जन-जन के अन्तर्वाह्य जगत को प्रकाशमय बना रहें हैं, उनके ज्ञान की गठरी गिरने की सम्भावना ही नहीं त्रिकाल में।"

"हाँ, हाँ, जनक जमाई दाशरथि राम के ज्ञान की गठरी गहरी खाईं में गिर गई है।"

"आश्चर्य ! कैसे और किस कारण से गिर गई वह गठरी।"

"प्रेम प्राबल्य के कारण उनके सखा की कमनीय कथा के आकर्षण से ज्ञान की हलकी-फुलकी गठरी गिर गई उनकी, तो क्या किया जाये। आश्चर्य तो यह है कि उन्हें गठरी खो जाने की न चिन्ता है न स्मृति ही है, अपितु उक्त कमनीय-कथा-नारी के प्रेम-पाश में ऐसे बँध गये हैं कि उनका यहाँ दर्शन होना दुर्लभ जान पड़ता है हम लोगों को।"

"तो हमारे बहनोई अब मिथिला न जायेंगे क्या ? [आश्रु] नहीं, नहीं, अवश्य आयेंगे वे, अपने इस श्याल का स्मरण कर। अरे, मिथिला-माधुरी-पान की स्मृति चित्त पटल पर अङ्कित होते ही वे अपने इस श्याल को शीघ्र गले में लगाने के लिए प्रयत्नशील हो जायेंगे।"

"अहो ! जब उनकी ज्ञान-पिटारी ही खो गई तो उसमें रखी हुई तूलिका के बिना चित्त के भीति में क्या अंकन करेंगे वे, अस्तु, अब चक्रवर्ती कुमार शीघ्र मिलेंगे आप श्री को, सम्भव नहीं जान पड़ता है।"

"हाय ! अनुजा चन्द्रकला के वाक् विसर्ग के अनुसार भाम राम का शीघ्र दर्शन सुलभ न हो सकेगा उनके श्याल को। कष्ट ! महाकष्ट !" [आश्रु हिचिकियाँ भरते हुए 'निमिकुल' में आवेशित चित्त से चञ्चल राम आसन पर मूर्छा भाव को प्राप्त होकर गिर जाते हैं।]

"चन्द्रकले ! प्राणेश्वर के प्राण-पखेरू तड़फड़ा रहे हैं अपने को हमारे अग्रज मानकर, अतएव सद्य सफलकारी कोई साधन करो तुम, जिससे अविलम्ब प्राणनाथ स्व-स्वरूप में स्थित होकर स्वस्थ हो जाएँ और अपनी दैनन्दिनी लीला से अपने परिकर वृन्दों को आनन्दित करते रहें, अन्यथा असहिष्णुता के कारण सीता अपने को सँभाल न सकेगी।"

"स्वामिनी जू ! शीघ्र साधन में जुटकर प्राणनाथ को स्वस्थ कर आपके नेत्रों का विषय बनाने में किंकरी से विलम्ब न होगा, किञ्चित धैर्य धारण करें।"

[चातुर्यपूर्णा चन्द्रकला जी श्याल-भाम के पृथक्-पृथक् दो चित्रों के साथ एक निर्मल दर्श लाकर अपने सर्वस्व के स्वास्थ्य लाभ का चिन्तन करने लगी और आवेशित चित्त राम को उठाकर उनके समक्ष दोनों चित्र रख देने के पश्चात् साधन प्रक्रिया में संलग्न हो गईं।]

"आपकी चन्द्रकला यह अभिज्ञप्ति प्राप्त करना चाहती है आपसे कि इन दोनों चित्रों में कौन-सा आपका चित्र है ? और कौन-सा आपके प्राण-प्रिय सखा का ?"

[मिथिलेश कुमार के चित्र में अँगुली रखकर]

"हाँ, हाँ, क्यों नहीं बता सकता। अपने स्वरूप को तो सभी पहचान लेते हैं। यह मेरा चित्र है।

[अपने चित्र की ओर संकेत कर] और यह मेरे भाम राम का है।

"अरी अनुजे ! यह सब क्या कर रही हो दृष्ट चित्तापहारी रसिक राय रघुनन्दन के चित्र को उनके श्याल के नेत्रों का विषय बनाकर ? अरी दयालुनी बहन ! विरह जन्य दयनीय दुर्दशा की 'वेलि का परिवर्धन करना चाहती हो क्या ? अपने अग्रज के हृदय-प्राङ्गण में।"

"नहीं, नहीं, आपश्री को आपके प्रेमास्पद की प्राप्ति कराने का प्रयत्न कर रही हूँ, आप अपनी चन्द्रकला पर अविश्वास न करें। अच्छा ! अब आप इस दर्श संस्थित प्रतिबिम्ब को देखें, तदुपरान्त बताने की कृपा करें कि यह प्रतिछाया आपकी है या अन्य की ?

[सम्मुख दर्श में दृष्टिपात कर] "अरे ! इसमें भी मेरे बहनोई का ही स्वरूप दृष्टिगोचर हो रहा है।"

"कहीं दर्श में स्वमुख दर्शन करने वाले को अपने से अतिरिक्त अन्य का मुख दृष्टि का विषय बनता है ? कभी कर्ण व नेत्र का विषय बनकर यह वार्ता आपके समक्ष आई है क्या ? यदि नहीं आई तो यह चित्र आपका छोड़कर किसका हो सकता है ? समीचीन उत्तर दें आप श्री।"

[गम्भीर मुद्रा में]

"हाँ, ऐसा होना तो असम्भव है, किन्तु असमय में अर्थात् दिनों के हेर-फेर में हाथ के सोने को मिट्टी के रूप में परिवर्तित होने में विलम्ब नहीं होता।"

"आपको इन सभी दर्श में एक-सा ही प्रतिबिम्व दीख पड़ रहा है कि नहीं ? जिसकी आकृति इस चित्र से सर्वथा मिलती है सर्व-सादृश्य को लिये हुए, जिसे आप बहनोई कहते हैं। गौर वपुष श्याल का यह चित्र है जिसे आप अपना मान रहे हैं।"

"हाँ, हाँ, हमारा चित्र तो यही है और यह दूसरा हमारे बहनोई का।"

'जिसे आप अपने भाम का चित्र बता रहे हैं, वह चित्र दर्श-संस्थित इस प्रतिछाया के सर्व-सादृश्य को लिये है कि नहीं ? शोधपूर्ण यथार्थ विनिश्चय से आप सुफल मनोरथ सहज सिद्ध हो जायेंगे।"

[दोनों ओर देखकर]

"अवश्य, अवश्य, यह दोनों चित्र एक ही पुरुष के हैं, ऐसी प्रतीति उत्पन्न कर रहे हैं।"

"तो यह दर्श स्थित प्रतिबिम्ब आपका ही है, यह दृढ़ निश्चय कर लें मन में, क्योंकि जैसी मुद्रा से आप इस दर्पण के सम्मुख आते हैं, वैसी ही भाव-भंगिमा एवं आकृति की छाया, जो आपसे अभिन्न हैं इसमें पढ़ती है और आप श्री यदि इसके समक्ष न रहें तो यह दर्पण निर्मल प्रतिबिम्ब हीन मात्र स्व-स्वरूप में स्थित रहता है, अतएव सर्वमान्य सिद्धान्त से यह प्रतिबिम्ब और यह चित्र दोनों आप ही के हैं। वचनों में विश्वास करें, सभी सिद्धियाँ श्रद्धा और विश्वास के आधार पर स्थित होने से किसी को भी प्राप्त हो जाती हैं।"

"तो यह चित्र मेरा नहीं है जिसे मैं अपना मान रहा हूँ।"

"नहीं, नहीं, यह आप श्री का चित्र नहीं है, यह आपके आत्मसखा मिथिलेश कुमार का है।"

"अरे ! तो मैं सीताग्रज लक्ष्मीनिधि नहीं हूँ क्या ?"

"नहीं, नहीं, आप भरताग्रज दाशरथि राम हैं।"

[श्री जानकी जू का स्पर्श, प्यार करके]

"तब तो ये मेरी बहन नहीं हैं क्या ?"

"कदापि नहीं, यह तो जनक सुवन की अनुजा श्री भूमिजा जू हैं।"

"हाय ! तो मैं लक्ष्मीनिधि नहीं हूँ। तो मैं कौन हूँ ?

"आप लक्ष्मीनिधि जी के प्राणप्रिय भाम, सीतापति रघुवंश विभूषण राम हैं।"

"अहो ! यह चित्र श्रीलक्ष्मीनिधि जी का है, अपना नहीं है, विश्वास के साथ कह रही हैं चन्द्रकला जी ?"

"हाँ, हाँ, विश्वास के साथ कह रही हूँ।"

"तो अपने को लक्ष्मीनिधि और इस चित्र को अपना चित्र मानने का आग्रह बुद्धि को कैसे प्रभावित कर लिया ? असम्भव को संभव के रूप में दृष्टि-पथ का विषय बनना महान् आश्चर्य है !"

"इन हमारी स्वामिनी जू के साथ कनक भवन के इसी सिंहासन में आसीन आप श्री ने हम लोगों के अग्रज मिथिलेश कुमार के चरित्र-चन्द्रिका की सुधासिक्त किरणों का पान अपने श्रवण पुटकों द्वारा करने के लिए अत्यातुर होकर हम लोगों को पिपासा समनार्थ प्रेरित किया, तदनुसार सीताग्रज का चरित्र श्रवण करते-करते आपका चित्त उन्हीं के आकार का

हो गया, अतएव आत्मा को चित्त के रंग में रँगते देर न लगी, आप श्री अपने को लक्ष्मीनिधि मानकर उन्हीं के मुख से बोलने लगे, स्वामिनी जू को बहन कहकर प्यार करना, अपने को अपना बहनोई मानना और तदनुसार चेष्टाओं का विनियोग करना इत्यादि देखकर विपत्ति की सरिता में बह गईं हम लोग। पश्चात् इष्टदेव की कृपा से किये हुए उपचारों द्वारा आप श्री के स्वास्थ्य-लाभ का श्रीगणेश देखकर धैर्य हुआ।"

"अहो! अब समझ में आया, यह सब प्रेम देव के दिव्य-कर्मों का क्रिया-कलाप था। अरे, अरे, आप सब प्यारी जू को अनुजा कहने से हँसती रही होंगी, यह अच्छा हुआ कि यहाँ आप मैथिल किशोरियों के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं रहा, अन्यथा लज्जा देवी राम को मुख ऊँचा करने का अवसर न देतीं। हाय! हाय!! क्या हो गया आज?"

"आप श्री ने तो सीता को संकोच की सरिता में बहा ही दिया था बहन कहकर। यदि मेरी सहेली चन्द्रकला जी न उपस्थित होती यहाँ।" मन्द-मन्द मुस्कुराती हुई तिरछी चितवनि से वैदेही ने कहा।

"प्रेम के भूत से अभिभूत होने पर जो जो दयनीय दुर्दशा जीव की हो जाए, वह थोड़ी ही है। अवश्यमेव मेरे प्रेमातिरेक जनित भ्रम के भालू से सबके हृदय में चोट पहुँची है, राम की हँसी उड़ाने की सामग्रियाँ भी मैथिलानियाँ को मिल गई हैं, अतः वे विनोदप्रिय होने के कारण अपने स्वभाव का संदर्शन कराती ही रहेंगी।"

"आप श्री लज्जा की वार्ता का चिन्तन न करें, अभी समय का सम्मान करें, यह पेय-पान आदि सेवन कर लें, ताकि मन की उलझन से उत्पन्न श्रम दूर होकर प्राणनाथ को सुखी और स्वस्थ बना दे।"

चन्द्रकला जी ने कहा।

श्री चक्रवर्ती कुमार ने सखियों के कथनानुसार पाद, हस्त और मुख प्रक्षालन करके पेय लिया, पान पाया और स्वस्थ होकर अपने खोये हुए भाम को प्राप्त कर सुखी हो गये, किन्तु लक्ष्मीनिधि का आवेश उतर जाने से सीताग्रज चिन्तन के विषय बन गये, अर्थात् अप्राप्त और प्राप्त में परिवर्तन हो गया।

इस प्रकार श्री भूमिजा जू से सुनी हुई रामकथा श्री सिद्धि मुख से श्रवण कर श्रीलक्ष्मीनिधि जी, श्रीराम का हार्दानुग्रह अपने पर अपरमित समझकर साश्रु विलोचन होकर सीताग्रज पुनः कथा सुनने की मुद्रा में स्थित हो गये।

× × ×

४६

उभय ओर की सुरम्य पर्वत श्रेणियों के मध्य परम पावन भूमि भाग में उदरस्थ पाषाण खण्डों से टकरा-टकरा कर कल-कल नाद करती हुई मन्दाकिनी की तीव्रतम धवल धारा, मुनियों एवं सुगन्धित शरीर वाली सुर सुन्दरियों को भी अपने में अवगाहन कराने के लिए मात्र आकर्षण ही नहीं कर रहीं थीं, अपितु बाध्य करके उनके मनमें स्व-संयोग के सुख से नन्दन वन विहारादि सुखों से उपरति उत्पन्न कर रहीं थीं।

अहा हा! सारस, हंस, बक आदि पक्षियों की नव-नव कमनीय केलि, कलरवों के साथ, मानसरोवर के शकुन कुल-कुलावतन्सों के चित्त को चंचल और हृदय को स्पर्धा का सागर बनाने में पटु प्रतीत हो रही थी, सुर-नर-मुनियों की कथा ही क्या कही जाए, वे तो पक्षियों से आकर्षित होकर उन्हें पिंजड़े में रखकर उनकी शरीर-सम्पत्ति-वाणी और केलि के आनन्द की अनुभूति करने के स्वभाव वाले ही होते हैं, अतएव मन्दाकिनी का तट प्रान्त प्रकृति प्रदर्शकों से शून्य नहीं था। अनसुइया कुमारी के प्रबल प्रवाह में भी मछलियों की उछल-कूद, उलटा-पलटी की क्रीड़ा पाताल गङ्गा में केलि करती हुई नाग कन्याओं के सादृश्य को लिये हुए नयनानन्दवर्धिनी बनी थी, वन्य मृग शावक उछलते कूदते हुए जहाँ-तहाँ तटनी के तट में आकर अमृतोपम वारि पानकर पुनः वन में उसी प्रकार प्रवेश कर जाते थे जैसे ग्राम्य पशु वन में, चारा चर्वण और पानी पीने की क्रिया से उपरत होकर गोष्ठ में समय-समय पर वानर, वृक, सिंह, व्याघ्र, चीते, तेन्दुए, हाथी गैंड़े, साँभर, नीलगाय, गुलवघे और सुअर, भालू, भैंसे आदि बड़े-बड़े जानवर भी सरिता के नीर-सुधा का पान करके ही तृप्ति का समनुभव कर रहे थे, किन्तु आश्चर्य! परस्पर विरोधी हिंसक जीव अपने सहज स्वभावगत वैर का विसर्जन कर युगपद एक घाट में पानी पीकर वन में विचरण उसी प्रकार कर रहे थे, जिस प्रकार किसी सुअवसर पर स्वजन सम्बन्धियों के आहार-विहार का युगपद प्रदर्शन। बहुत अच्छे लग रहे थे वे स्वस्थ भीमकाय वन्य पशु, क्यों न हों अच्छे? वे सब मुनिकुल-कमल-दिवाकरों की तपस्थली चित्रकूट कानन के प्रभाव से प्रभावित थे, अन्यथा उक्त हिंसक पशुओं में सुष्ठु साधु स्वभाव कहाँ! मन्दाकिनी के दोनों किनारों के पर्वतीय वन प्रान्त साल, ताल, तमाल, खजूर पुन्नाग, पाटल, बकुल, मधूक, धात्री, धवा, अशोक, आम्र, विजयसार, पद्माक्ष, हर्रा, बहेड़ा, चार, तेंदू, कपित्थ, बदरी, वेल, बाँस, जामुन, जमती, अर्जुन, अमली, शीशम, सागौन, कदम्ब,

कौल्हा, और निम्ब, पीपर, वट आदि वृक्ष विशालकाय गगन का स्पर्श करते हुए ऐसी शोभा सम्पन्न उपमा उत्पन्न कर रहे थे मानो पर्वत-राज पुत्री मन्दाकिनी के वन-विहार काल में बहुसंज्ञक, बहुवेषी शस्त्रधारी अंग संरक्षकों की भीर दायें-बायें साथ-साथ चल रही हो। केतकी, मालती, केवड़ा, मधुमालती, माध्वीक, चमेली, जूही आदि सुन्दर सुगन्धित पुष्प वाली बहुसंख्यक, बहुजातीय लताएँ तटनी के दोनों तटों की शोभा परिर्वधित कर रही थीं। लगता था कि मन्दाकिनी की ये सब दासियाँ हैं जो सिर में पुष्पों की थाली लिए हुए समय-समय अपनी स्वामिनी के ऊपर पुष्प विखेरती हुई साथ-साथ अनुगमन कर रहीं हैं।

सुरभित सुखद नव-नव नेत्रप्रिय मनमोहक पुष्पित-पुष्पों के कमनीय तरुण तरु, देव कुमारों के सदृश शोभा सम्पन्न हो रहे थे, लगता था जैसे ये गङ्गा की तटवर्ती लताओं के साथ स्वविवाह करने की अभिलाषा से पुष्पों का उपहार लेकर मन्दाकिनी जी की पूजा करने के लिए अवनत कंधर एक पैर से खड़े हैं और मँड़राते हुए मधु लुब्ध मधुप-परिचारक उनकी प्रशंसा के गीत गा गाकर लताओं के चंचल चित्त को सुमन सुवृक्षों की ओर आकर्षित कर रहे थे, प्रार्थनीया देवी का कल-कल नाद उनके महान् मनोरथ की पूर्त्ति का द्योतक था। अहो! प्रकृति प्रभा को पूर्ण प्रदर्शनी दर्शकों के दृश्य-दर्शन की शक्ति को केन्द्रित करके अन्यत्र जाने का अवकाश ही नहीं दे रही थी, वास्तव में दृश्य था बड़ा मनोरम चित्रकूट की वनस्थली चित्त को कूटस्थ करके सहज ही, "मैं मेरे" का सर्वथा सम्बन्ध छुड़ाकर अपने यहाँ निवास करने के लिए बाध्य कर रही थी, सारे कल्याण गुण-गणों की प्रदात्री गिरिवर की वनभूमि हिचकती न थी अपने आश्रितों को अपना सर्वस्व प्रदान करने में।

चतुर्दिक मन्दाकिनी की लोनी लहरों से टक्कर खाती हुई एक ऊँची, लम्बी-चौड़ी विशाल-विस्तार वाली स्फटिक मणि की शिला का दिव्य दर्शन देवताओं के भी मन को मुग्ध कर बाध्य कर देता था उसमें बैठने के लिए उन्हें। सुरम्य सुन्दर शिला-पुत्री को अपने अङ्क में लेकर स्नान सा करा रही थीं मन्दाकिनी जी। किलोल देखते ही बनता था मछलियों का मन्दाकिनी में, जैसे घर के भीतरी प्राङ्गण में छोटे-छोटे बच्चे क्रीड़ासक्त होकर इधर-उधर दौड़ लगाते हों, माँ की देख-रेख में।

प्रवहिता के युगल पुलिन का वन प्रदेश आत्म रमणकों को भी अपनी रमणीयता से आकर्षित कर अपने में रमण करने के लिए उल्लसित बनाने

में सक्षम हो रहा था। अहा हा ! वन्य पुष्पों की सुगन्ध सुरलोक तक पहुँच-कर सुन्दर शरीर वाली सुन्दरियों को भी गन्धोन्मादित बनाकर अपने देश में विहार करने के लिए उनके मन को ललचीला बना रही थी। भ्रमर पंक्तियों का गुन्जार करते हुए पुष्पों पर मँडराना तो रसिकों के हृदय में रस का संचार सर्वभावेन करने का कला-कौशल्य था। कोकिल की प्यारी-प्यारी मीठी-मीठी कुहू-कुहू की कोमल-कण्ठी ध्वनि अपने रसीले राग से सबको रससिक्त कर रही थी, मयूरों का मनमोहक रूप-लावण्य एवं पंख फैलाकर उनका नृत्य करना द्रष्टा के दृगों को अपलक कर मनको अपनी ओर आकर्षित करने में पूर्ण सक्षम हो रहा था, पपीहा को कहना ही क्या, वह तो पिया-पिया की बोली बोलकर प्रेयस-प्रेयसी में प्रेमोन्माद की दशा उपस्थित कर उन्हें दो से एक बनाने में समर्थशाली सिद्ध हो रहा था। अन्य पक्षियों का कलरव भी सुन्दर सुहावन मनभावन तो था ही, साथ ही लगता था कि इस वन-प्रदेश में विहार करने की लालसा को संवरण न करके श्रुतियों के समूह छन्द, शकुन स्वरूप धारण करके वेद-वेद्य चित्रकूट विहारी की स्तुति करते हुए मन्दाकिनी के युगल पुलिनों में विचर रहे हैं।

अहा हा ! शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु मन्दाकिनी के जल को स्पर्श करता हुआ कैसा सुखद शीतल प्रतीत हो रहा था, लगता था कि यह पवन गुलाब, केतकी, केवड़ा आदि के जल को अपने साथ लिए हुए, सम्पूर्ण वन्य जीवों एवं वन्य भूरुह-लताओं को गन्धोन्मादित कर उनको सिर हिला-हिला कर झूमने को बाध्य कर दिया है। स्वर्ग सुख तिरस्कृत होकर भी कामद वन की ओर निम्न-नयन एवं निम्न सिरा बनकर कौतूहल वश देख तो लेता है एक बार, किन्तु स्पर्धा शून्य नहीं हो पाता उसका हृदय।

"यह असमोर्ध्व, अलौकिक दृश्य दासी ने ध्यानावस्था में चिदाकाश की भीति पर अङ्कित स्पष्ट रूपेण अर्न्तदृष्टि से दर्शन किया है जीवन धन !" लक्ष्मीनिधि वल्लभा ने कहा।

"अहो ! दिव्य दृष्टि से दिव्य दृश्य का दर्शन करने वाली हमारी प्राण वल्लभा का अन्तःकरण परम विशुद्ध अहं शून्य हो गया है, अतएव अहं सम्बन्धी झंझावात चित्त के प्रदेश में न उठना स्वाभाविक है। अतः चिदा-काश में अप्राकृत दृश्यों का दर्शन हमारी भगिनि की भाभी को सहजतया हो जाए, तो इसमें आश्चर्य ? हाँ आगे और कौन से दृश्य के दर्शन को अपनी दृष्टि का विषय बनाया हैं। आपने ?"

"उक्त शुभ्र स्फटिक शिला के पीठ पर आसीनासनासीन तपस्वी वेष अपने ननँद ननदोई का दर्शन अन्तर्चक्षुओं को अतिशयानन्द की अनुभूति कराने वाला रहा, प्राणनाथ ! आप श्री की अनुजा एवं अनुजापति श्री राम भद्र उपरोक्त दृश्यों का दर्शन कर-करके अयोध्या के राजसुख को नगण्य समझकर चित्रकूट के वैभवानन्द की चर्चा में तल्लीन थे।"

"अयोध्या के राजसिंहासन से, अतीतानन्द को प्रदान करने वाला यह स्फटिक शिला का सर्वोच्चि आसन है प्रिये ! लोक-सिंहासन तो राग-द्वेष विवर्धक एवं लोक-वेद के आधीन है, किन्तु चित्रकूट का आसन राग-द्वेष के जननी-जनक [अहं-मम] का विनाशक और लोक-वेद के पार हो जाने का पथ-प्रदर्शक है। यह आत्मा को स्पर्श करता है और वह देह को स्पर्श करता है, यह अमृत है, वह मृत है। यह प्रकाश-स्वरूप है, वह तमसाछन्न है, यह अविनाशी, वह विनाशशील है, यह भूमा, वह अल्प है, यह अनन्त है, वह सान्त है, अतएव जनक प्रसूता वैदेही के चित्त में अयोध्या के राज्य वैभव की स्मृति का उदय न होना स्वाभाविक है।"

कौशिल्यानन्दवर्धन जू ने सुनयनानन्दवर्धिनी जू से कहा।

"मेरे हृदयानन्दवर्धन रसिकेश्वर रसराज जहाँ हैं, वहाँ ही परमानन्द का साकार स्वरूप अनुभूति का विषय बनता है प्राणनाथ ! अन्यत्र तो त्रिताप की ज्वाला जगज्जीवों के जलाने के लिए धू-धू करके निरन्तर जलती ही रहती है। अतएव जहाँ सर्वभूतहितकारी, सर्वहृदय सम्राट, सर्वेश्वर, रमयताम्बर, रघुकुलशिरोमणि जानकी के जीवनधन हैं, वहाँ ही अयोध्या एवं महावैकुण्ठ है, अस्तु, वहाँ ही साकेत सुषमा सर्वभावेन संप्रतिष्ठित है, जीवनधन !"

आप श्री के साथ इस सीतासंगिनी को जो अतीतानन्द की अनुभूति होती है, प्राणेश्वर ! उस सुख-सिन्धु सीकर की समता समस्त वैकुण्ठों के सर्वसुख जब नहीं कर सकते, तब भौतिकानन्द की बात ही करना व्यर्थ है रसिकेश्वर ! दिव्य-वपुष वाली विवुध वनिताएँ भी आप श्री की स्नेह-भाजना जनक प्रसूता के भाग्य-वैभव को देखकर स्पर्धा करने लगी हैं, क्योंकि उन्हें इस आनन्द के कणांश का दर्शन स्वप्न जगत् में भी दुर्लभ ही नहीं अपितु अप्राप्त है।"

"प्रेम पंडिते ! प्राणेश्वरी के दर्शन, स्पर्श एवं प्रेम की उच्चतम स्थिति में स्थित दासीवत् कैङ्कर्य प्रक्रिया से जो परमानन्द प्राप्त है कौशल नरेश के कुमार को, उस परमैकान्तिक सच्चे सुख ने अयोध्या के राज-वैभवीय सुख को विस्मृति के गर्त में निक्षेप कर दिया है।

अहा हा ! चित्रकूट की वनश्री, विदेह वंश वैजयन्ती के शरीर वन की सम्पत्ति का दर्शन निम्नशिरा कर तो लेती है, किन्तु लज्जा के अन्तःपुर में तुरन्त प्रवेश कर जाती है और वहाँ अपनी सखी सहेलियों से परस्पर विनिमय के द्वारा यह निश्चय करती है कि श्रीराम वल्लभा के श्री अङ्गों के अलङ्कार बनकर उनका आलिङ्गन पा जाती तो जन्म का साफल्य संप्राप्त हो जाता क्योंकि इनके विनियोग में न आने वाली वस्तु निरर्थक और नगण्य ही नहीं अपितु अतिरिक्त भोक्ता को नरक का निवासी बनाने की कुञ्जी है। अस्तु, एक कमयनीय कामना हृदय-प्रदेश में उद्‌भूत होकर सुख-स्वरूप को सुखानुभूति करने की प्रेरणा दे रही है, वह यह है कि इस वन प्रदेश के मनोज्ञ, नेत्र प्रिय सुन्दर सुगन्धित पुष्पों को चुनकर अपनी प्राण वल्लभा के श्रीअङ्गों में आभूषित करने के लिए नख-शिखान्त आभूषणों का स्वयं निर्माण करूँ, जो कला-कौशल्य के अप्रतिम दर्शनीय दृष्टान्त का प्रत्यक्ष प्रमाण हो, प्रिये !

"अहो ! आनन्द ! आनन्द ! आनन्द ! अपनी वल्लभा के वल्लभ स्वकर से निर्मित सुमन सुसज्जित सुन्दर सुगन्धित आभूषणों को अपने ही पाणिपङ्कजों से हृदयेश्वरी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में धारण कराकर जिस सुख की अनुभूति करेंगे वे, उस सुख के कणांश का अनुभव उनको छोड़कर किसी के अनुभव का विषय स्वप्न में भी न बनेगा, प्रिये ! रघुनन्दन राम ने कहा !"

"प्यारे ! अपनी प्रियतमा को सर्वभावेन अयोध्या-मिथिला से विशिष्ट एवं विलक्षण आनन्द देने के लिए कितने उपायों का अवलम्बन लेते रहते हैं, आप ! धन्य हैं रसिक राय की रस प्रदायिनी प्रेममयी प्रक्रिया को। रसिकाधिराज रघुनन्दन जू की सदा जय हो, सदा जय हो।"

"वन्य पुष्पों की पहनी हुई वन माला प्रकृति-नायिका की प्रभा को प्रोदीप्त करके उसके प्रति द्रष्टा के चित्त को आकर्षित ही नहीं करती अपितु द्रष्टा को स्वयं के आकार का बना देने में समर्थ सिद्ध हो रही है। अहो ! कहीं पुष्पमय प्रकृति के कण्ठहार को उतारकर पुनः राम के करकञ्जों से गुम्फित राम वल्लभा के रति-मद-मर्दनकारी अङ्गाभरण बनने का सौभाग्य संप्राप्त हो जाए इन पुष्पों को, तो फिर कहना ही क्या है ? सुख की चरम-सीमा संप्राप्त सपत्नीक सुर-नर-मुनि समुदाय का समाधानित चित्त भी पुनः पुष्पों से स्पर्धा कर चित्रकूट-गिरि-वन के सुरभित सुमन कुल में जन्म लेने के लिए तपोमय जीवन बिताने में लग जाए, तो कोई आश्चर्य का विषय न होगा। साथ ही इन पुण्य स्वरूप पुष्पों के आभूषण धारण करने से राम-प्रिया को अपने प्रीतम के मन को अपनी ओर आकर्षित करने का शक्ति-

सौलभ्य उनके हृदय में आनन्द सिन्धु का आन्दोलन उत्पन्न किये बिना न रहेगा, प्रियतमे !'' रसिकेश्वर राम ने कहा।

''सबमें रमने एवं सबको अपने में रमाने की सर्वविधि कला-कुशलता की पूर्णिमा ने ही रमयतांवर को राम कहने के लिए विवश कर दिया है सभी सुर-नर-मुनि समुदाय को।

''अहा हा ! रम रहा है जड़ चेतनात्मक जगत जिसमें उन पुरुषोत्तम राम ने अपनी रामा में अपने मन को रमाकर रामा के सौभाग्य को कितना समुन्नतशील बना दिया है, प्राणनाथ। अहो ! उस असमोर्ध्व सौभाग्य-सम्पन्ना को देखकर सर्वाङ्ग-सुन्दरी सुगन्धित शरीर वाली सुर-सुन्दरियाँ बिना स्पर्धा किये न रहेंगी रसिकेश्वर।'' श्री जनकनन्दिनी जू ने कहा।

''अच्छा होगा प्रियतमे ! कि हम अब चलकर मन मुग्धकारी सुन्दर सुगन्धित पुष्पों का चयन कर लें। ये सुमन समुदाय कबसे खड़े-खड़े प्रतीक्षा कर रहा है, कि हम अपने कर-स्पर्श का सुख देकर अपनी हृदय हर्षिणी के अलङ्कार रूप में परिवर्तित करने के लिए उन्हें उतार लें,'' श्री दशरथनन्दन राम ने कहा।

''अच्छा है नाथ ! स्वामी के साथ सेविका का भी चलना एवं उनके कार्य में हाथ बँटाना सह-धर्मिणी का धर्म होगा, अस्तु, दासी भी अपने सेव्य का अनुगमन करके ही सुखी, निरापद और निर्भय रह सकेगी, ठीक है ?''

''चित्राङ्कित बन्दर से भय करने वाली कुसुम कोमला किशोरी को संग में लेकर ही उनके प्राण वल्लभ निःशंक उपर्युक्त कार्य कर सकेंगे, अन्यथा यहाँ अकेली छोड़कर प्राण वल्लभा को राम के प्राण व चित्त जब यहाँ रहेंगे, तब सुमन सञ्चय प्रक्रिया के बिना उनकी प्रियतमा के पुष्पालङ्कार कैसे विनिर्मित हो सकेंगे और अङ्ग-अङ्ग में आभूषणों के सजाये बिना उन्हें सुखानुभूति कैसे संभव हो सकेगी। एक के दो और दो के एक होकर रहने वाले पुरुष विशेष का पृथक्-पृथक् रहना सम्भव नहीं है, प्रिये ! अतः दोनों का साथ चलना ही औचित्य के अनुरूप होगा।'' श्रीकौशल किशोर ने मन्दस्मित के साथ कहा।

''नाथ !'' [लक्ष्मीनिधि वल्लभा ने कहा]—

''उक्त चिदानन्दमयी लीला के उपसंहार में क्या देखती हूँ, कि आप श्री के भगिनि-भाम पत्तों के बड़े-बड़े युगल द्रोण बनाकर सुन्दर सुरभित सुमनों का चयन कर रहे थे—कि...... .. . ''

''ये सुरभित सुर-वृक्षों के दिव्य कमनीय कुसुम जो सद्य सुविकसित पराग परिरञ्जित हैं, देवराज की प्राण-प्रियतरा श्रीशची देवी ने कर पुटाञ्जलि नतमस्तका होकर आप श्री के सेवा में भेजा है क्योंकि वर्तमान

की समय अभिरुचि के अनुसार आप श्री के कैङ्कर्य में कुछ हाथ बँटाना उन्होंने अपना सौभाग्य समझा है अतः इन्हें स्वीकार करें।" देव-कन्याओं ने कहा।

"अहा हा! त्रिविष्टप की स्वामिनी का यह महाकृपा प्रसाद मुझे शिरोधार्य है। "अहो भाग्यमहोभाग्यम्" कितना स्नेह! कितना वात्सल्य! राम धन्य हो गया, कृतार्थ हो गया, देवकार्य करने में समर्थ हो गया।"

"देवियो! सची माँ से शिरनत प्रणाम कहना दशरथनन्दन का, अपने अमोघ आशीर्वाद की किरणों के प्रकाश से देव-कार्य करने की सूझ-बूझ सतत संप्रदान करती रहेंगी वे।"

बात की बात में नत-कन्धरा वे सभी देव-कन्याएँ अन्तरिक्ष में कहाँ विलीन हो गईं? दृष्टि का विषय न बना सकी मैं। तदनन्तर कामद वन विहारी विहारिणी जू, अन्य अच्छे-अच्छे वन्य पुष्पों के उतारने में, परस्पर वार्ता करते हुए लग गये।

"विवुध बालाओं के अङ्ग-अङ्ग में आनन्द के आवर्त उमड़ते से दृष्टिगोचर हो रहे थे हम लोगों को देखकर। देव-देवी तो मनुष्यों के पूज्य हैं, किन्तु कितना सम्मान! कितना प्रेम उनकी ओर से हमको प्राप्त हुआ है, प्राणनाथ! यह सब आपके परमोदात्त दिव्य कल्याण गुण-निलयंता के चमत्कार पूर्ण वैभव का प्रदर्शन है, आत्म-सम्पत्ति तथा देह-सम्पत्ति के दो महान् महोदधियों के सम्मिलन का वैभव अन्यत्र स्वप्न में भी सुदुर्लभ ही नहीं अपितु अप्राप्य है, इसलिए त्रिभुवनवासी सभी सुर-नर-नाग आपका अपलक दर्शन कर अपने को कृतार्थ समझते हैं। उपहारों की ओर आपके दृष्टि-निक्षेप से ही सभी स्वयं को सेव्य से समादरणीय समझकर परम सौभाग्यशालियों की पंक्ति में अपने को आसीन कर देते हैं। आपकी अनुगामिनी यह दासी परम प्रसन्नता का अनुभव कर रही है सुर-ललनाओं से संपूजित आप श्री का दर्शन कर-करके।" श्री जनकनन्दिनी जू ने कहा।

"भूमिजा को स्वर्णवन के सुरभित सुर-वृक्ष प्रसूनों के अलङ्कारों से सुसज्जित करने की कामना से ही तो पुष्पों की डालियाँ समर्पित की हैं, देव-कन्याओं ने। अस्तु, देवी इन्द्राणी की यह पुष्प-पूजा जनक प्रसूता की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए ही है, बिना आपके कृपा-वैभव के देव-कार्य अशक्य और असंभव है प्रिये!"

"श्याम मुख के काले घन प्रशंसा की वर्षा करके कहीं सीता-शकुन को आहत न कर दें, मानद! भला देखें तो सही, आपके करकञ्जों को बढ़ते देखकर ये पुष्पित पुष्प शाखाएँ अपने आप अवनत होकर प्रणाम कर रही हैं, एवं कह रही हैं कि मन चाहे सुन्दर सुगन्धित सुमन उतारने के

ब्याज से हमें अपना स्पर्श देकर परमानन्द प्रदान करें। कोई-कोई शाखाएँ तो श्री पाणि-पद्म का स्पर्श पाकर प्रसून चुनने का अवसर ही नहीं दे रही हैं आपको ! वे स्वयं बढ़कर पुष्प-पात्री में सुरभित सुमनों को माल्य रूप में परिवर्तन करने के लिए विसर्जन कर देती हैं।''

''नहीं, नहीं, ये सभी सुरभित सुमन भूरूह, भूमिज हैं, अतः अपनी भगिनी भूमिजा के अलङ्कार बनने के लिए पुष्प राशि को समर्पित कर रहे हैं भगिनि-स्नेह से प्रभावित होकर। राम तो अलङ्कार बनाने वाला केवल कलाकार है, उससे इनको क्या पड़ी है, अस्तु, यह सब आपके प्रिय कार्य को कर रहे हैं, धन्य है इनका स्वजन प्रेम।''

''मैं यदि इनकी भगिनि हूँ तो आप भाम हैं, विचारें भला आप, भाम के प्रति श्याल की कम प्रीति होती है क्या ? आप जब मेरे भैया की प्रीति का स्मरण कर-करके उनके विरह को नहीं सहते। हे सखे ! हे मिथिलेश कुमार कह कहकर आँखों से अश्रु विमोचन किया करते हैं।''

प्रेमज्ञे ! मिथिलेश कुमार का अदर्शन अवश्यमेव असह्य है, किन्तु प्रवाह में बहते हुए को तिनके का आश्रय ही बहुत हो जाता है, अस्तु, मैथिल भूमिजा के बन्धु के अभाव में कामद वन के भूमिज पुष्प तरुओं का दर्शन, स्पर्शन ही दाशरथि राम को विरह के गर्त से निकालकर अपने संप्रयोग सुख से शान्ति की शय्या में शयन कराने वाला सिद्ध होता है।'' साश्रु विलोचन रघुनन्दन ने कहा।

''कृपा सिन्धु की सीकरांश कृपा की प्राप्ति से जब त्रिभुवन आनन्द अनुभूति करने लगता है, तब आपकी पूर्ण कृपा दृष्टि की संप्राप्ति से चित्रकूट के भव्य भूरुहों का भाग्य कितना होगा, कोई अङ्कन नहीं कर सकता है। अहो ! वर्तमान में तो मेरे भी यही प्रिय बन्धु हैं।''

कहकर जनक राजकिशोरी जू एक पुष्पित कदम्ब से भैया-भैया कहकर लिपट गईं, प्रेमाश्रुओं से उसके मूल का सिंचन कर-करके मिथिला की स्मृति में विभोर बन गईं।

[सचेत करके]

''प्रिये ! सुमन सञ्चय पर्याप्त हो गया है, हम लोग अब अविलम्ब चलें स्फटिक शिला पर, ''तत्रैव सुमनेन सुमनानामाभूषणानि विरचिष्यामि''

''भवदीय इच्छैव ममेच्छाऽस्ति प्रभो !'' श्री विदेह-राजनन्दिनी जू ने कहा।

एवं प्रकारेण परस्पर वार्ता का विनियोग करते हुए आप श्री के भगिनि-भाम उपर्युक्त शिला पृष्ठ पर आ विराजे। वन देवियों के द्वारा बिछाये हुए दिव्य पुष्प स्तरण पर बैठे हुए परम शोभनीय युगल मूर्ति ऐसे

लग रहे थे, जैसे काम एवं काम-कान्ता मन्दाकिनी के मध्य शिला पृष्ठ पर मुनिवेष बनाकर तपोमय विराजित हों अपनी कुछ अभीष्ट सिद्धि के लिए।

"प्रिये ! चिदाकाश विलसित चिन्मयी युगल लीला का प्रदर्शन आपकी चित्त भीति पर और अङ्कित हो तो अविलम्ब मेरे श्रवण पुटों में उस चरितामृत का घोल उड़ेल दें। कहें शीघ्र कहें, आगे जो कुछ दृष्टि व श्रवण का विषय बनाया हो आपने।" लक्ष्मीनिधि ने कहा।

"श्यामसुन्दर श्यामा के अङ्ग प्रत्यङ्गों के सुमनालङ्कार अत्यन्त अभिरुचि के साथ विनिर्मित करने लगे, कलाधर की कला प्रत्यक्ष होकर कलेश्वर की सेवा में संलग्न हो गई उसे भी तो अपने को कृतकृत्य करना था, लगता था कि पुष्पगुंथन करते समय इच्छामात्र से पुष्पपात्री के सुगन्धित सुमन स्पर्श पाते ही कलाधर का, सुन्दर आभरण का रूप धारण कर लेते थे। नखशिखान्त पुष्पाभूषण तैयार हो गये क्षणों में, विलम्ब हो भी कैसे ? जिसके भृकुटि विलास से अनन्त ब्रह्माण्डों की रचना होने में क्षण नहीं लगता, उसके संकल्प से थोड़े से सुमनों के आभूषण बन जाने में कौन आश्चर्य !" सिद्धि जी ने कहा।

"अहा हा ! ये शिरोभूषण कितने सुन्दर और सुगन्धित सुमनों से सुसज्जित किये गये हैं जो मात्र रामवल्लभा के ही धारण करने योग्य हैं प्रिये ! लीजिये, राम स्वयं अपनी प्राण सञ्जीवनी सीतासंगिनी का शृङ्गार कर रहा है, अहो ! इन कर-कमलों की सार्थकता अपनी प्राण प्रियतमा के कैङ्कर्य करने में ही है, ये धन्य हो गये, सुख-स्वरूप हो गये। प्राणवल्लभा की कुञ्चित कारी-कारी गभुआरी सुचिक्कन चिलकदार, इत्र सिंचिता कलित केशावलि का स्पर्श इन्हें प्रेमोन्मादित कर आनन्द के अम्भोधि में अस्त कर रहा है।

अहो ! आनन्द ! आनन्द ! प्रियाजू के कण्ठ, वक्षस्थल एवं करकञ्जों में उनके प्राण-प्रियतम द्वारा प्रेमपूर्वक पहनाये हुए पुष्पाभरण कितने अच्छे, आकर्षक, मनोज्ञ और मनोहारी हैं, राम के पाणिपङ्कजों को ही मात्र आनन्द हो अङ्गस्पर्श से, सो नहीं, अपितु राम को सर्वभावेन अनन्यार्हतया रमाने में समर्थ हो रहे हैं, ये अलङ्कार। सुमन सुसज्जित कटि मेखला एवं नूपुर प्रियाजू के कटि प्रदेश तथा युगल श्रीपद प्रान्त की प्राप्ति करके भाग्य वैभव के उच्चतम शिखर में स्थित हो गये हैं, और अब अपनी आश्रय प्रदात्री के कैङ्कर्य में स्वरूपतः संलग्न होकर अपने लिये इनके हृदय में कोई प्रयोजन नहीं रह गया, क्योंकि प्रकृतोदभव होते हुए भी ये प्रकृति से ऊपर उठ गये हैं, अहं और मम का बीज सर्वभावेन भस्मीभूत हो चुका

है इन सौभाग्यशाली सुमनों का। यदि इनके सौन्दर्य, सौकुमार्य, सौष्ठव, सौगन्ध, माधुर्य और लावण्यादि गुणों से प्रकृति-पति भी रीझा हुआ सा प्रतीत होने लगे तो इसमें आश्चर्य क्या ?

'जिनकी प्रशंसा प्रेम पारखी परम प्रभु करते हों उन प्रसूनों के भाग्य का सूर्य-उदय होकर सबके हृदय गुफा में छाये हुए गहन अज्ञानान्धकार को दूर करने में सहज ही सक्षम हो सकेगा, प्राणनाथ !''

''चिदाकाश में उदित मेरे प्राणप्रिय सर्वस्व भगिनि-भाम से सम्बन्धित आगे के और दृश्य हों, तो उन्हें भी अपने प्राणपति के आतुर श्रवणों तक पहुँचाने में हमारी प्रियतमा को विलम्ब नहीं करना चाहिए, क्यों ?''

''हाँ, हाँ, आपश्री के बिना सङ्केत प्राप्त किये भी दासी विदेह वंशावतंस को उनकी बहिन वैदेही का चरित्र सुनाने ही जा रही थी कि आदेश भी प्राप्त हो गया घनश्याम के श्याल का। दृश्य का दर्शन दिल के दर्द को दूर करके सुख की सुन्दर सृष्टि का सञ्चार करने वाला था, प्राणधन।''

सद्य सुविकसित पङ्कज श्री की आभा का अतिक्रमण करने वाला शारद-शशि-शत-विजित वरानन अपनी लाड़ली ननँद का, चतुर्दिक् ज्योतिर्मय बनाते हुए सुधा का संप्रवर्षणा कर रहा था, अहो ! वन, पर्वत, नदी, नार, पशु, पक्षी, बृक्ष, गुल्म, लता एवं पृथ्वी, पाषाण सभी रससिक्त हो रहे थे, सभी अपनी-अपनी सहज क्रिया से विरत होकर भाव-समाधि में संस्थित हो गये थे। आनन्द ! आनन्द !

स्मरण करते ही मन के सहित वाक्शक्ति का सर्वभावेन शमन होने लगता है, जीवनधन ! जिस-शोभा सुख का परिसीमन अनन्त को भी अप्राप्य है, उस अपरिसीमित अगाध समुद्र में उठती हुई उर्मियों का अङ्कन करने में कौन प्राणी एक दो कहकर अपने को समर्थशाली सिद्ध करेगा ?

अहो ! सौन्दर्य-सार आनन्दघन का एक अनुपम अनोखे महोदधि ने अपनी वेला का उल्लंघन करके उक्त महासागर को उदरस्थ कर लिया, कुछ क्षणों के लिए वह प्रशान्त रहकर पुनः अठखेलियाँ खेलने लगा। गङ्गा-यमुना के संगम की सितासित झाँकी परम पवित्र तो थी ही, साथ ही सुख सुषमा श्रृङ्गार की अनन्तता से परिपूर्ण थी, जिसकी भव्यता एवं नव्यता क्षण-क्षण परिवर्धित हो रही थी, रसासिक्त हो गया कामदगिरि का कानन। क्या पशु, क्या पक्षी, क्या भूरुह क्या लता, क्या मन्दाकिनी के जल-जीव और क्या पृथ्वी, क्या पाषाण सभी भव को भूलकर भौमा सुख का अनुभव करने लगे। चर-अचर सी और अचर-चर सी चर्या करते प्रतीत हो रहे थे। लगता था, स्फटिक शिला घन के बीच दमकती दामिनि के लिये

हुए आकाश में ऊँचे उठकर सुधा की विपुल वर्षा कराने में ऊँचे पर्वतों जैसी सक्षम हो रही है, उस प्रदेश का कोई भी जड़ चेतनात्मक प्राणी सुधा के सिन्धु में अस्त होने से न बचा। आनन्द! आनन्द! आनन्द!"

"कनकलता को तमाल तरु से लिपटी हुई देखकर सुर-सुन्दरियाँ एवं वन-देवियाँ आकाश से कमनीय कुसुमों की विपुल वर्षा के साथ जयघोष करने लगीं, दूर से दर्शन करके युगल विभूतियों की अतृप्ति की संवेदना सह न सकीं वे, अतएव समीप आकाश संस्थिता देवियाँ दिव्य दर्शन का परम लाभ स्वनेत्रों को समर्पित कर परम आनन्द की अनुभूति करने लगीं, कुछ काल अलौकिक सुख समाधि में निमग्न रहकर आपके भगिनि-भाम की कीर्ति का गायन कलापूर्ण करने लगीं। अहो! विबुध वधूटियों की नृत्यकला, स्वरलहरी भाव-भंगिमा और वाद्य-वादन का नैपुण्य चित्ताकर्षक एवं अपने में आत्मसात करने वाला था, युगल-दम्पति कृपापूर्ण दृष्टि का निक्षेप सुर ललनाओं पर कर-करके स्वयं सुख स्वरूप होकर भी आनन्द की उर्मियों को अपने शरीर समुद्र से उछाल रहे थे। सब ओर आनन्द! आनन्द!"

"युगल किशोर-किशोरी की सुमन सुसज्जित झाँकी देव-कन्याओं को सर्वभावेन अपनी ओर आकर्षित कर उन्हें कहाँ और जाना है, इस स्मृति से शून्य कर दिया था।"

"इतने ही में चिदाकाश से उस दृश्य का अदर्शन हो गया, परम निधि गिर गई, सर्वस्व लुट गया, हाय! हाय! कहकर उसासें भरने लगी, निज के परम लाभ को न पाकर ललचीले लोचन अश्रु बहाने लगी। हो ही क्यां सकता था इसके अतिरिक्त। चित्रादि सहचारियाँ ने युगल कृपा वैभव के चमत्कार पूर्ण दृश्य-दर्शन की कहानी सुनने को अत्यन्त आतुर हो गई, तदनन्तर आप श्री की सेवा में समुपस्थित होकर यथा वाक्-बुद्धि के अनुसार प्राणधन के श्रवणों तक उनके भगिनि-भाम के चरितामृत को पहुँचाने की सेवा दासी ने की है जीवनधन!" सिद्धि कुवँरि जी ने कहा।

"अहा हा! प्रभु कृपा की पूर्ण अधिकारिणी अपनी प्रियतमा के मुख विनिश्रित कथा-सुधा का पान करके मैं अमर हो गया, जीवन धन्य हो गया।"

इस प्रकार श्रीमिथिलेश कुमार अपनी प्राणवल्लभा श्रीसिद्धि कुवँरि जी के साथ श्रीवैदेही वल्लभ व वैदेही जू की गुप्त अन्तर्कथाओं को कह सुनकर कालक्षेप किया करते थे। धन्य है इन दोनों रामानुरागियों को, जिन्हें श्री सीताराम जी महाराज अपने से अभिन्न आत्मा ही मानते थे।

———

अनन्त श्री विभूषित श्री स्वामी रामहर्षण दास जी महाराज के अनमोल भक्ति साहित्य

१—वेदान्त दर्शन (ब्रह्म सूत्र व्याख्या)
२—श्री प्रेम रामायण
३—लीला सुधासिन्धु (रामायण)
४—गीता ज्ञान
५—सिद्धि स्वरूप वैभव
६—औपनिषद् ब्रह्म बोध
७—रस चन्द्रिका
८—ध्यान वल्लरी
९—सिद्धि सदन की अष्टयामीय सेवा
१०—चिदाकाश की चिन्मयी लीला
११—प्रपत्ति स्तोत्र
१२—पंच-शतक

संस्करण प्रेस में—

१३—विनय-वल्लरी
१४—प्रेम-वल्लरी
१५—विरह-वल्लरी
१६—वैदेही-दर्शन
१७—मिथिला माधुरी
१८—हर्षण सतसई
१९—उपदेशामृत
२०—आत्म विश्लेषण
२१—विवाहाष्टक
२२—वैष्णवीय विज्ञान
२३—विशुद्ध ब्रह्म बोध

भावी प्रकाशन—

२४—लीला विकास
२५—राम राज्य
२६—शरणागति रहस्य

प्रकाशन विभाग

श्री रामहर्षण कुंज, नयाघाट, परिक्रमा मार्ग, श्री अयोध्या
जिला—फैजाबाद (उ० प्र०) दूरभाष २३१७

मुद्रक—श्री वैष्णव प्रेस, दारागंज, प्रयाग दूरभाष : ६०७४६३